डायरी के कुछ पन्ने

[दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधीजी के साथ]

लेखक

घनश्यामदास बिड़ला

मिलने का पता

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक,
श्यामलाल, एम० ए०
हरिजन कालोनी, किंग्स्वे, दिल्ली

संस्करण
नवंबर १९४० : १०००
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक—जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका

फ़ेडरेशन, जिसका पूरा नाम है Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, भारतीय वाणिज्य-व्यापार की प्रमुख प्रतिनिधि-संस्था है। भारतीय का अर्थ यहाँ यह समझना चाहिए—जिसमें पैसा भारतवासियों का लगता हो और जिसका संचालन भी भारतवासियों के ही हाथ में हो। फ़ेडरेशन एक संघ या महासंघ है जिससे देश के विभिन्न भागों की विभिन्न भारतीय व्यापारी संस्थायें सम्वद्ध हैं। डायरी-लेखक श्री घनश्यामदास बिड़ला इसी फ़ेडरेशन के प्रतिनिधि-स्वरूप लन्दन की दूसरी गोलमेज़ कान्फ़्रेंस में शरीक हुए थे।

पहली कान्फ़्रेंस में, फ़ेडरेशन अपने १९३० के इस निश्चय के अनुसार कोई भाग न ले सका कि जिस कान्फ़्रेंस में महात्मा गांधी नहीं जाते या जिसे उनका आशीर्वाद प्राप्त नहीं होता, उससे फ़ेडरेशन बिल्कुल अलग रहेगा। जब गांधी-इर्विन समझौते से देश का राजनैतिक वातावरण बदला और महात्माजी के लन्दन जाने की पूरी आशा दीखने लगी तब फ़ेडरेशन दूसरी कान्फ़्रेंस में शरीक होने को तैयार हुआ।

कान्फ़्रेंस में उसको तीन प्रतिनिधि भेजने का हक़ हासिल हुआ। वह और भी सीट—डायरी-लेखक के शब्द में, 'कुर्सियां'—चाहता था, मगर लार्ड इर्विन के समझाने-बुझाने पर तीन से ही सन्तुष्ट हो गया। अपने इन

प्रतिनिधियों के नाम उसने बड़े लाट के पास बाक़ायदा भेज दिये और १४ अप्रैल, १९३१ को उनकी ओर से इन नामों की मंज़ूरी भी आ गई।

मगर जब ४ अगस्त को कान्फ़्रेंस के मेंबरों के नाम प्रकाशित हुए तब सबको यह देख कर आश्चर्य हुआ कि फ़ेडरेशन को तीन की जगह एक ही कुर्सी दी गई थी और सरकार ने उसके लिये, फ़ेडरेशन के भेजे हुए नामों में से, सिर्फ़ सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास का नाम चुन रखा था।

और श्री घनश्यामदास बिड़ला दोनों कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिये निमंत्रित किये जाते हैं। इस प्रकार डायरी-लेखक को लंदन में कुछ दिन गोलमेज़ के इर्दगिर्द भी बिताने पड़े। यह उनकी दूसरी यूरोप-यात्रा थी, जिसका ख़ास उद्देश्य इंग्लैण्ड होते हुए अमेरिका जाना था। यह यात्रा उन्हें अब कुछ महीनों के लिये स्थगित कर देनी पड़ी।

कान्फ्रेंस में सरकार ने जो चाहा था, वही हुआ। वहाँ जो दुखदायी दृश्य देखने में आये, उनका वर्णन करते हुए लेखक ने अपना यह कटु अनुभव प्रकट किया है कि बात बिगाड़ने वाले "सब-के-सब सरकार द्वारा मनोनीत" थे। "यदि प्रजा द्वारा मनोनीत किये गये होते तो यह नौबत न आती।" विधान-निर्माण के लिए कान्स्टीटच्युएण्ट असेम्बली (Constituent Assembly) जैसी संस्था पर अपनी राष्ट्रीय माँग में, इतना ज़ोर क्यों दिया जाता है, यह लेखक का अनुभव सुनने पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

डायरी-लेखक का जो भाषण कान्फ्रेंस के खुले अधिवेशन में हुआ वह स्पष्टवादिता से भरपूर था। उसमें उन्होंने इस बात पर पूरा प्रकाश डाला कि प्रस्तावित आर्थिक प्रतिबन्ध भारतवासियों के लिये असह्य क्यों थे। आमदनी का ८० फ़ी सदी से अधिक भाग फ़ौजी खर्च, कर्ज़ के सूद आदि के लिये इस प्रकार अलग कर दिया गया था कि वह भारत के भावी अर्थ-सचिव की पहुँच से बिल्कुल बाहर था—उसमें मीनमेप करने का उन्हें कोई भी अधिकार न था। कहना चाहिए कि यह सारा हिस्सा खर्च की इन मदों के लिये 'गिरवी'

या 'बन्धक' रख दिया गया था। उस भाषण में इस बात पर काफ़ी जोर था कि इँग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के बीच सबसे पहले इस खर्च की रक़म के बारे में समझौता होकर, हिन्दुस्तान का बोझ हलका होना चाहिए—गिरवी या बन्धक से इस मुल्क की आमदनी के मुनासिब हिस्से को छुटकारा मिलना चाहिए। भाषण के अन्तिम शब्द ये थे:—"कोई भी सरकार किसी देश की सम्मति के बिना उस पर शासन नहीं कर सकती। अगर अमन-चैन क़ायम रखना है तो यह ज़रूरी है कि या तो आप हमारी मर्ज़ी से हम पर हुकूमत करें या हमको अपने ऊपर आप हुकूमत करने दें। इस तरह से हम आप के दोस्त और साझेदार हो सकते हैं। अगर आपने इस मौक़े पर हमसे कोई दोस्ताना समझौता न किया तो यह आप की भयंकर-से-भयंकर भूल होगी। मेरे एक अंग्रेज़ दोस्त उस रोज़ मुझसे कह रहे थे कि "१९३० की गोलमेज़ कान्फ़्रेंस में न आकर तुम लोगों ने बड़ी भूल की। उस समय मज़दूर-सरकार की हमदर्दी से तुम लोग काफ़ी फ़ायदा उठा सकते थे।" मालूम नहीं इसमें कहाँ तक सचाई है, मगर मौजूदा सरकार ने यह मौक़ा हाथ से जाने दिया, और हिन्दुस्तान के साथ कोई समझौता न किया तो मेरी समझ से यह उसकी बहुत बड़ी भूल होगी। मैं अपने मुल्क के नौजवानों को अच्छी तरह जानता हूँ। बहुत सम्भव है कि कुछ वर्षों बाद इँग्लैण्ड को महात्मा गांधी या भारतीय नरेशों या मुझ जैसे पुरानपन्थियों से समझौता न करके बिल्कुल नये आदमियों से, नई अवस्थाओं में,

नये विचारों से, नई आकांक्षाओं से निपटना पड़े। इंग्लैण्ड को सावधान हो जाना चाहिए।"

लन्दन से लौटने पर, ब्रिटिश स्वत्वों के संरक्षण के लिये 'समझौता' चाहनेवाले मि० बेन्थल ने, अंगरेज़ व्यापारियों की एक सभा में, कान्फ्रेंस की कहानी सुनाते हुए, कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनसे फ़ेडरेशन के प्रतिनिधियों को बहुत दुःख और आश्चर्य हुआ। मि० बेन्थल के इस भाषण की जो रिपोर्ट अखबारों में छपी, उसका उनकी ओर से कोई खण्डन नहीं हुआ। इसमें महात्मा गांधी पर कुछ ऐसे दोषारोपण किये गये थे जिनमें सत्य का लेश भी न था। साथ ही कुछ ऐसी बातें थीं जिन्हें पढ़कर किसीको भी यह सन्देह हो सकता था कि फ़ेडरेशन के प्रतिनिधियों या महात्मा गांधी से उन्होंने लन्दन में समझौते की जो बातचीत की, वह कूटनीति में भले ही शुमार हो, मगर वह चीज़ न थी जिसका उनकी ओर से बार-बार विश्वास दिलाया गया था। हम पाठकों का ध्यान डायरी के मि० बेन्थल-सम्बन्धी भाग की ओर आकर्षित करते हैं।

फ़ेडरेशन के प्रतिनिधियों ने अपनी कमेटी को जो रिपोर्ट दी उसमें महात्मा गांधी के सम्बन्ध में ये विचार प्रकट किये थे :—

"कान्फ्रेंस के असफल होने का दोष महात्मा गांधी के माथे मढ़ने की चेष्टा की गई है। इससे बढ़ कर कोई झूठा अपवाद या कलंक नहीं लगाया जा सकता। हम लोगों को लंदन में उनके साथ काम करने का और उनके विचारों

या 'वन्धक' रख दिया गया था। उस भाषण में इस बात पर काफ़ी ज़ोर था कि इँग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के बीच सबसे पहले इस ख़र्च की रक़म के बारे में समझौता होकर, हिन्दुस्तान का बोझ हलका होना चाहिए—गिरवी या बन्धक से इस मुल्क की आमदनी के मुनासिब हिस्से को छुटकारा मिलना चाहिए। भाषण के अन्तिम शब्द ये थे :—"कोई भी सरकार किसी देश की सम्मति के विना उस पर शासन नहीं कर सकती। अगर अमन-चैन क़ायम रखना है तो यह ज़रूरी है कि या तो आप हमारी मर्ज़ी से हम पर हुकूमत करें या हमको अपने ऊपर आप हुकूमत करने दें। इस हालत में हम आप के दोस्त और साझीदार हो सकते हैं। अगर आपने इस मौक़े पर हमसे कोई दोस्ताना समझौता न किया तो यह आप की भयंकर-से-भयंकर भूल होगी। मेरे एक अंग्रेज़ दोस्त उस रोज़ मुझसे कह रहे थे कि "१६३० की गोलमेज़ कान्फ़्रेंस में न आकर तुम लोगों ने बड़ी भूल की। उस समय मजूर-सरकार की हमदर्दी से तुम लोग काफ़ी फ़ायदा उठा सकते थे।" मालूम नहीं इसमें कहाँ तक सचाई है, मगर मौजूदा सरकार ने यह मौक़ा हाथ से जाने दिया, और हिन्दुस्तान के साथ कोई समझौता न किया तो मेरी समझ से यह उसकी बहुत बड़ी भूल होगी। मैं अपने मुल्क के नौजवानों को अच्छी तरह जानता हूँ। बहुत सम्भव है कि कुछ वर्ष बाद इँग्लैण्ड को महात्मा गांधी या भारतीय नरेशों या मुझ जैसे पूँजीपतियों से समझौता न करके बिल्कुल नये आदमियों से, नई अवस्थाओं से,

नये विचारों से, नई आकांक्षाओं से निपटना पड़े। इंग्लैण्ड को सावधान हो जाना चाहिए।"

लन्दन से लौटने पर, ब्रिटिश स्वत्वों के संरक्षण के लिये 'समझौता' चाहनेवाले मि० बेन्थल ने, अंगरेज़ व्यापारियों की एक सभा में, कान्फ्रेंस की कहानी सुनाते हुए, कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनसे फ़ेडरेशन के प्रतिनिधियों को बहुत दुःख और आश्चर्य हुआ। मि० बेन्थल के इस भाषण की जो रिपोर्ट अख़बारों में छपी, उसका उनकी ओर से कोई खण्डन नहीं हुआ। इसमें महात्मा गांधी पर कुछ ऐसे दोषारोपण किये गये थे जिनमें सत्य का लेश भी न था। साथ ही कुछ ऐसी बातें थीं जिन्हें पढ़कर किसीको भी यह सन्देह हो सकता था कि फ़ेडरेशन के प्रतिनिधियों या महात्मा गांधी से उन्होंने लन्दन में समझौते की जो बातचीत की, वह कूटनीति में भले ही शुमार हो, मगर वह चीज़ न थी जिसका उनकी ओर से बार-बार विश्वास दिलाया गया था। हम पाठकों का ध्यान डायरी के मि० बेन्थल-सम्बन्धी भाग की ओर आकर्षित करते हैं।

फ़ेडरेशन के प्रतिनिधियों ने अपनी कमेटी को जो रिपोर्ट दी उसमें महात्मा गांधी के सम्बन्ध में ये विचार प्रकट किये थे:—

"कान्फ्रेंस के असफल होने का दोष महात्मा गांधी के माथे मढ़ने की चेष्टा की गई है। इससे बढ़ कर कोई झूठा अपवाद या कलंक नहीं लगाया जा सकता। हम लोगों को लंदन में उनके साथ काम करने का और उनके विचारों

से अवगत होने का काफ़ी अवसर मिला। हम लोग अपनी जानकारी से कह सकते हैं कि मुनासिब शर्तों पर सुलह या समझौता करने के लिए महात्माजी बराबर तैयार थे। वह अपनी माँग में नरम-से-नरम रहे और समझौते के लिए उन्होंने अपनी ओर से कुछ भी उठा न रक्खा। अपने एक भाषण में उन्होंने अपनी शांति-प्रियता का परिचय इन मर्मस्पर्शी शब्दों में दिया कि "दिल्ली में जो समझौता थोड़े समय के लिए हुआ था, उसको मैं स्थायी शांति के रूप में परिणत देखना चाहता हूँ, मगर ईश्वर के लिए, ६२ वर्ष के इस जरा-जीर्ण व्यक्ति को एक मौक़ा तो दो। उसको और कांग्रेस को, जिसका वह प्रतिनिधि है, अपने दिल में कोई छोटा-सा कोना तो बख़्शो।" मगर कान्फ़ेन्स में यह अरण्यरोदन ही रहा, और मि० बेंथल के शब्दों में महात्माजी को 'खाली हाथ' लौटना पड़ा।"

डायरी कान्फ़्रेंस के ऐसे अधिवेशन से सम्बन्ध रखती है जो महात्मा गांधी की उपस्थिति के कारण विश्वविख्यात हुआ—जिसकी बातों में भारतवासी-मात्र ने खास दिलचस्पी ली। इसके लेखक इसमें वर्णित घटनाओं के अत्यन्त निकट थे, बल्कि जो कुछ हो रहा था उसकी भीतरी जानकारी जैसी उनको थी शायद ही किसी दूसरे को रही हो। जिस इतिहास को उन्होंने अपनी इस डायरी का मुख्य विषय बनाया, उसके निर्माण में उनका अपना भी हाथ था। इन सब कारणों ने उनके साक्ष्य में विशेष प्रामाणिकता ला दी—बराबर के लिए उनके इस बयान को 'काम की चीज़' बना दिया।

ऐसी डायरी का प्रकाशन आज इस आशा और विश्वास से किया जा रहा है कि इसके पन्ने न केवल इतिहास का शोध या अध्ययन करने वालों के लिये ही उपयोगी होंगे, बल्कि उन लोगों के लिये भी जिनका विषय वर्तमान या आधुनिक राजनीति है।

—पारसनाथ सिंह

भूमध्यसागर में

डायरी के कुछ पन्ने

[दूसरी गोलमेज में गांधीजी के साथ]

: १ :

२६ अगस्त, '३१

"राजपूताना" जहाज़

बंबई में आज सवेरे से ही चहल-पहल थी। महात्माजी कुछ काल के लिए भारतवर्ष में न रहेंगे, सबके चेहरे से यही भाव झलक रहा था। मुझे तो सद्भाग्य से ही यह संयोग मिल गया है कि जिस बोट से गांधीजी और मालवीयजी जाते हैं, उसीसे मैं भी जा रहा हूँ। जब जहाज़ में जगह ली थी, तब तो यह निश्चित था कि महात्माजी आर० टी० सी० में न जायँगे, किन्तु विधि ने तो पहले से ही निश्चित कर रक्खा था कि गांधीजी को विलायत जाना है और **'विधि का रचा को मेटनहारा'** ?

बँगले से चलकर बंदर पर पहुँचा तो फोटो लेनेवाले पागल दर्जनों की तादाद में मुझ पर टूट पड़े। न मालूम कितने प्लेट उन्होंने बर्बाद किये। २५ से कम तो न थे। स्वदेशी धन को विदेश इस तरह भेजा जाता है! आखिर मेरे फ़ोटो की क़ीमत ?

जहाज़ पर सवार होने के थोड़ी ही देर बाद महात्मा गांधी की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। बस, सब लोग समझ गये कि गांधीजी आ रहे हैं। सारे जहाज़ में चहल-

पहल मच गई। क्या हिन्दुस्तानी, क्या अँगरेज़, स्त्री-पुरुष दौड़-दौड़कर मौके के स्थान पर कब्ज़ा जमाने लगे। बन्दर से आधी मील की दूरी तक के सभी मकानों की छतें खचाखच भरी थीं। चारों ओर से जय-जय ! जहाज़ के ऊपर पहुँचने में महात्माजी को काफ़ी कष्ट हुआ। मगर अँगरेज़ मल्लाहों ने किसी तरह हाथों की बाड़ बनाकर ऊपर तक पहुँचाया, और सुरक्षित स्थान में खड़ा कर दिया। वहीं से किनारे के लोगों को महात्माजी दर्शन देते रहे। क्या विचित्र दृश्य था ! आर० टी० सी० में जो लोग पहले गये थे वे जनता के प्रतिनिधि हैं, या एक मन वज़न का दुबले-पतले शरीरवाला गांधी प्रतिनिधि है, इस बात की गवाही लोगों का भाव दे रहा था। इतने में ही थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी होने लगी। मानों इन्द्र भी विदाई के आँसू बहा रहा था। किन्तु लोग अपनी जगह से न हटे। जहाज़ का घंटा हुआ। फिर दूसरा घंटा हुआ। तीसरा घंटा हो जाने पर लोगों को स्मरण हुआ कि आखिर हमें जहाज़ से उतरना है। वे किनारे उतरे, मगर आँखें सबकी गांधीजी की ही ओर लगी थीं। वल्लभभाई के चेहरे पर विषाद था। जवाहरलालजी के चेहरे पर मुस्कराहट। पंडितजी अभी पहुँचे भी न थे। सब लोग पूछते थे—"मालवीयजी अभी नहीं आये ?" आखिर ऐन मौके पर पहुँचे। जहाज़ ने लंगर उठाया और धीरे-धीरे सरका, तब कहीं पता लगा कि हम लोग जानेवाले हैं। रामेश्वर, ब्रजमोहन रूमाल हिला-हिला कर संकेत कर रहे थे। पर मैं तो विचित्र दशा में गोते खा रहा था। एक छोटे से दुबले-पतले आदमी ने लोगों को

कैसा मोहित कर लिया है, इसी पर विचार कर रहा था। किन्तु जहाज़ चलने लगा तो याद पड़ा कि जा रहा हूँ। ज्यों-ज्यों जहाज़ और किनारे के बीच का अन्तराय बढ़ता गया, त्यों-त्यों मन तेज़ी के साथ किनारे की ओर दौड़ लगाने लगा। शायद किनारे के लोगों की भी यही हालत थी। आख़िर आँखों ने काम देना बन्द कर दिया और लोगों को पहचानना भी मुश्किल हो गया। तब कानों से जयनाद सुनते रहे। अन्त में तो समुद्र का खूँ-खूँ रह गया। हिन्दुस्तान का तो अब नामो-निशान भी नहीं। चारों तरफ़ पानी-ही-पानी है और उसके बीच हमारी छोटी-सी दुनिया—"राजपूताना" जहाज़! हिन्दुस्तान के हृदय-सम्राट् की ऐतिहासिक यात्रा का यह दृश्य सचमुच हृदय पिघलानेवाला है।

: २ :

३० अगस्त, '३१

"राजपूताना" जहाज़

जहाज़ पर मर्य्यादा प्राय: भंग हो गई है। १९२७ में मैं आया था तो कपड़ों का स्वांग रचना पड़ता था। रात के कपड़े, दिन के कपड़े, पूरा झमेला था। घंटा भर तो प्राय: कपड़े बदलने में ही लगता था। धोती-कुर्ता पहनना तो मानो गुनाह था। अब की बेर यह हाल है कि धोती-कुर्तेवाले जहाज़ पर बेखटके फिरते हैं। न तो कोई पूछनेवाला है, न किसी को संकोच है। मुझे अब मालूम होने लगा है कि अपने धोती-कुर्ते छोड़ आया, यह ग़लती हुई। जहाज़ के मुसाफ़िर, कप्तान वग़ैरह भी धोती-कुर्तों को बर्दाश्त कर लेते हैं। यों तो उन्हें बुरा ही लगता होगा। पर शिमले का आदेश है कि गांधी के आराम का ध्यान रक्खो, इसलिए सब कुछ बर्दाश्त कर लेते हैं।

पंडितजी के लिए चूल्हा अलग बन गया है। गंगाजल भी साथ है। मिट्टी का कनस्तर, स्वदेशी साबुन, दातौनों का बड़ा-सा बंडल। उधर गांधीजी का चर्खा, पींजन, बड़ी-बड़ी विचित्र चीज़ें साथ चल रही हैं। जहाज़वाले भी देखते हैं कि यह शिवजी की बरात अच्छी आई। आते-जाते तिरछी

नज़र डाल जाते हैं, पर ऊपर से पूरा अदब दिखाते हैं।

जहाज़ चलते ही गांधीजी ने अपना असबाब सँभालना शुरू किया। इस ट्रंक में क्या है? उसमें क्या है? यह पूछताछ शुरू हुई। बेचारी मीराबेन तो झट समझ गईं कि तूफ़ान आनेवाला है। महादेव और देवदास तो बंबई गांधीजी के साथ ही पहुँचे थे। इसलिए सारे प्रबंध का भार मीराबेन के ऊपर ही था। और जहाँ गांधीजी ने हिसाब पूछना शुरू किया, मीरा समझ गईं कि खैर नहीं है। पहले-पहल तो गांधीजी ने पूछा, इस ट्रंक में क्या है? मीरा ने कहा—बापू, इसमें आपके कपड़े हैं। गांधीजी ने कहा—मेरे कपड़े? इतने बड़े ट्रंक में? मीरा ने कहा—लेकिन यह भरा हुआ नहीं है। गांधीजी—हाँ, तो तुम इसे भर देना चाहती थीं, यह नहीं सोचा कि हिन्दुस्तान में तो मेरे कपड़े बिना ट्रंक के ही चलते थे।

मीरा ने ट्रंक खोलकर सामग्रियाँ सामने रक्खीं तो गांधीजी का चेहरा लाल हो गया। सामान ज़्यादा न था; किन्तु एक भी पैसा अधिक खर्च हो, यह गांधीजी को असह्य था। पेटियाँ सारी मँगनी में लाई गई थीं, किन्तु गांधीजी को सन्तोष न हुआ। पूरा घंटा तो उन्हें अपनी मंडली को धमकाने में ही लगा। अन्त में तय यह हुआ कि थोड़ा-सा सामान छोड़कर बाकी अदन से वापस कर दिया जाय। गांधीजी बोले—"आज तो मैं इस सामान को देखकर घबरा गया हूँ। कागज़ रखने के लिए भी यह लोग पेटी लाये हैं, मानो मैं अब पुरानी आदतों को छोड़नेवाला हूँ।"

पाँच बजे अपने बैठने का स्थान चुनने के लिए गांधीजी छत पर आये। मैंने कहा—"जहाज़ का अन्तिम हिस्सा तो बहुत हिलता है, इसलिए काफ़ी कष्टप्रद है। एक मिनिट भी मुझसे तो यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता, इसलिए इसे देखना ही फ़िज़ूल है। जहाज़ के बीच का हिस्सा ही देख लें।" गांधीजी कहने लगे कि इसको भी तो देख लें और मेरे लाख विरोध करने पर भी जहाज़ के अन्तिम हिस्से का एक खतरनाक कोना पसन्द किया। मैं तो हक्का-बक्का-सा रह गया। क्या कोई समझदार मनुष्य ऐसी तकलीफ़ से भरी हुई निकम्मी जगह पसन्द कर सकता है? किन्तु—"**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः**"—गांधीजी की विचार-श्रृंखला यह थी कि जो स्थान अच्छा है, वहाँ हमारे बैठने से किसीको कष्ट हो सकता है, अच्छे स्थान में एकान्त भी संभव नहीं—इसलिए यह बुरा स्थान ही हमारे लिए अच्छा है। मैंने कप्तान तक दौड़-धूप की, उनका विचार बदले, इसकी काफ़ी कोशिश की। पर "**हज़रते दाग़ जहाँ बैठ गये बैठ गये!**" गांधीजी तो टस-से-मस भी न हुए। आखिर पंडितजी ने अपना ज़ोर आज़माना शुरू किया। उन्होंने आग्रह किया कि गांधीजी फ़र्स्ट का टिकट बदला लें। सन्ध्या-समय घूमते-घूमते मैंने भी थोड़ा आग्रह किया। गांधीजी ने पूछा—तुम क्यों आग्रह करने लगे? मैंने कहा—"आपने टिकट तो सेकण्ड का लिया है। किन्तु आपकी प्रतिष्ठा के कारण फ़र्स्ट के तमाम हक़ आपको स्वतः मिल जायँगे। फ़र्स्ट की छत पर कनात लगाकर आपके लिए प्रार्थना-घर

बनवा दिया है, क्या यह उचित नहीं कि आप फ़र्स्ट के पैसे ही दे दें?" गांधीजी ने कहा—नहीं, इस दलील से तो यह सार निकलता है कि हम फ़र्स्ट के तमाम हक़ों को स्वयं त्याग दें। नतीजा यह हुआ कि गांधीजी ने फ़र्स्ट की छतपर घूमना उसी समय बन्द कर दिया। प्रार्थना की कनात तो एक ही दिन काम आई। आज तो उन्होंने प्रार्थना अपने निकम्मे स्थान पर ही की। प्रार्थना करते समय जहाँ गांधीजी ध्यान करते थे, वहाँ मैं यह सोचता था कि भगवन्, प्रार्थना समाप्त हो तो यहाँ से उठूँ। बैठनेवाले दो मिनिट में ही आधे बीमार हो जाते हैं। वमन नहीं हुआ, यह ख़ैरियत है। कहते हैं जहाँ चाँद-सूरज की गति नहीं है, वहाँ भगवान् विराजते हैं। हमारे जहाज़ के बारे में यह कुछ अंश में कहा जा सकता है कि जहाँ भले आदमियों की होश-हवास के साथ गति नहीं है, वहाँ गांधीजी विराजते हैं। कोई मिलने-वाला जाता है, तो एक मिनिट से ज़्यादा रुकना भी पसन्द नहीं करता। बंबई से चलते ही समुद्र तूफ़ानी हो गया। इसलिए गांधीजी का स्थान ऐसा रहता है, जैसे हिन्दुस्तान का डोलर-हिंडा।

: ३ :

३१ अगस्त, '३१

"राजपूताना" जहाज़

पंडितजी की भी बात सुनिए। आज तीसरा दिन है, पर पंडितजी की प्रायः एकादशी ही चलती है! बात यह है कि पंडितजी का रसोइया बीमार है और आटे-सीधे के बक्स का कहीं पता नहीं। पंडितजी से लाख प्रार्थना की कि महाराज, बोट का चावल-आटा लेना बुरी बात नहीं है; किन्तु पंडितजी कहते हैं कि भूख लगेगी तब ले लेंगे, अभी भूख नहीं लगी है, तबीयत सुधर रही है। परसों और कल तो थोड़ा-थोड़ा दूध ही लिया। सामान की पेटी के लिए सारा जहाज़ छान डाला, किन्तु वह भी ऐसी ग़ायब हुई कि न पूछिए। पंडितजी ख़ुद तो खाते नहीं, अपने रसोइये से कहते हैं—बैजनाथ! थोड़ा खा लो। बैजनाथ क्या खाये? पेटी तो ब्रह्मलोक चली गई, जहाज़ का सामान अभी तक पंडितजी ने लेना स्वीकार नहीं किया। पर आज पंडितजी को मना लिया है और जहाज़ के सामान से रसोई बनेगी। पंडितजी कुछ कमज़ोर हो गये हैं, लेकिन वैसे प्रसन्न हैं। समुद्र के तूफ़ान के कारण दो दिन कुछ व्यथित रहे। समुद्र कुछ शान्त हो रहा है। शाम को रसोई भी बनेगी।

पंडितजी ने आने में काफ़ी कष्ट उठाया है। पंडितजी की प्रकृति के मनुष्य को ऐसे सफ़र में बहुत कष्ट है, किन्तु देश के लिए पंडितजी सब कुछ सहन कर लेते हैं। सच पूछिए तो पंडितजी की दृष्टि में यह जहाज़ नरक है, इंग्लिस्तान रौरव है। आज कहते थे—तुमने अच्छी-सी केबिन मेरे लिए सुरक्षित की, किन्तु वह है तो केबिन (कोठरी) ही। यदि स्वदेश का काम न हो, तो पंडितजी ऐसा सफ़र करने की स्वप्न में भी इच्छा न करें। पंडितजी में प्रेम और आशा-वाद की कमी नहीं। पेटी ग़ायब हो गई, सारा जहाज़ छान डाला, किन्तु पंडितजी अब भी कहते हैं कि पेटी ज़रूर मिलेगी, ग़ायब कैसे हो सकती है ?

इसका उत्तर मैं क्या दूँ ? गोविन्दजी ने कल और आज पेड़ों से ही काम चलाया है। रामेश्वरजी ने तो कहा था कि पेड़े ज़्यादा ले लो, मगर मुझे क्या ख़बर थी कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होनेवाली है !

: ४ :

१ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

समुद्र आज बुधवार को शान्त हुआ है। सूरजिया तो अब भी बीमार है। पारसनाथजी ने आज होश सँभाला है। मैंने एक वेला भोजन नहीं किया। गांधीजी मज़े से हैं। पंडितजी की रसोई बनने लगी है—जहाज़ के सामान से ही। गोविन्दजी को पेड़ों से कुछ तकलीफ़-सी हुई। महात्माजी की प्रार्थना रोज़ सुबह-शाम होती है। हिन्दुस्तानी आते हैं। अंगरेज़ दूर से ही नज़र बचाके देखते रहते हैं। आज रात को अदन पहुँच जायँगे। पंडितजी कहते थे कि "जहाज कैदखाना है। देखो, कैसी लीला है! हम पैसे भी देते हैं और कैद में भी रहते हैं।" कल बेचैन होकर कहने लगे—

सीतापति रघुनाथजी, तुम लगि मेरी दौर;
जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर!

और ठौर यहाँ कहाँ सूझे!

: ५ :

३ सितम्बर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

अदन अभी छोड़ा है। अदन में महात्माजी का खूब स्वागत-सत्कार हुआ। सम्मानपत्र दिया गया; उन्होंने जवाब दिया। स्पीच हिन्दुस्तान के अखबारों में छपी होगी। महात्माजी को ३२५ गिनी भेंट की गईं। सत्कार में अरब, यहूदी, हिन्दुस्तानी सभी शामिल थे। हज़ारों आदमियों की क़तार रास्ते में खड़ी हो गई, जो अपनी अरबी भाषा में सत्कार-सूचक नारे लगा रही थी। जिस गाड़ी में महात्माजी थे, उसमें सरोजिनी नायडू, सर प्रभाशंकर पट्टणी और मैं था। कोई-कोई अरब तो पट्टणीजी को ही गांधीजी समझ बैठते थे, क्योंकि पट्टणीजी की सफ़ेद दाढ़ी, सफ़ेद अंगरखा, सफ़ेद साफ़ा सचमुच महात्मापन-सा ला देता है। मीटिंग में भी एक हज़ार मनुष्य थे। अधिकतर हिन्दुस्तानी ही थे।

पंडितजी के लिए यहाँ से आटा-सीधा और दो घड़े पानी के ले लिये गये हैं। हमलोगों ने मजाक किया कि पंडितजी के गंगाजल के घड़े अब अरब के पानी से भरे जायँगे, और अरब का पानी पीकर पंडिजी को शौकतअली का साथ

देना होगा। किन्तु पंडितजी कहते हैं कि पानी का विष सुबह-शाम की सन्ध्या से धो डालूँगा!

× × × ×

महात्माजी लंदन पहुँचते ही क्या करेंगे, यह जानने की सबको उत्सुकता है। आर० टी० सी० में करीब १०० मेंबर होगये। ऐरे-गैरे नत्थू खैरे, सभी इसमें शामिल हैं। यह हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस तो है नहीं, गांधीजी को छोड़ प्रतिनिधि कहे जानेवाले सज्जन सारे-के-सारे मनोनीत हैं, चुने हुए नहीं। कुछ अच्छे हैं, तो बहुत से रद्दी हैं। असल में तो यह सब-के-सब सरकार के प्रतिनिधि हैं। ऐसी हालत में अकेले गांधीजी क्या कर सकेंगे? और बहस में भी सरकारी हाँ में हाँ मिलानेवाले खैरख्वाहों की आर० टी० सी० में कहाँ कमी है? ऐसी अवस्था में वहाँ के लोग सहज ही कह सकते हैं—गांधीजी, आप ठीक कहते हैं, मगर आपके मुल्क के लोग सहमत नहीं हैं, इसलिए आपकी बात कैसे मान ली जाय? ऐसी स्थिति अवश्य ही समय की बर्बादी करनेवाली होगी। न कुछ काम ही बनेगा। इसलिए निश्चय ही गांधीजी ऐसे झमेले में न पड़ेंगे। "गढ़ां राजा मढ़ां जोगी!" जबतक गांधीजी भी अपनी मढ़ी में बात न करेंगे तबतक कोई सुननेवाला नहीं। इसलिए विचार इस तरह से है कि आर० टी० सी० तो हाथी के दाँत की तरह शोभा बढ़ाती रहे और गांधीजी खाने के दाँत की तरह मंत्रिमण्डल एवं वहाँ के नेताओं से अलग मंत्रणा करें, उन्हें यहाँ की हालत समझावें, वहाँ की जनता को उकसावें और इस तरह किसी

निर्णय पर पहुँचें। यदि वहाँ का मंत्रिमण्डल अलग बात करने की इच्छा प्रकट न करे, तो गांधीजी फेडरल कमेटी में अपना वक्तव्य सुना देंगे और कहेंगे, मुझसे बहस करनी हो तो करो। इतने पर भी यदि गांधीजी को सब धान बाईस पसेरी बनाने की चाल रही तो गांधीजी तुरन्त ही वापस चले आयेंगे।

मेरा अपना मत है कि जाते ही गांधीजी वापस आने का निर्णय सुना देंगे। मंत्रिमण्डल गांधीजी से अलग मंत्रणा करेगा और शेष में गांधीजी ही आर० टी० सी० बन जायँगे।

× × × ×

फेडरेशन की ओर से सरकार सर पुरुषोत्तमदास को और मुझको मनोनीत करना चाहती है, ऐसा गांधीजी से शिमले में कहा गया। मैंने सर पुरुषोत्तमदास से बंबई में ही कह दिया था कि या तो तीनों जायँगे या बिल्कुल न जायँगे। गांधीजी ने बंबई पहुँचते ही वाइसराय को एक ज़ोरदार चिट्ठी लिखी है। मेरा खयाल है कि गांधीजी के पैर जम गये तो तीनों बुला लिये जायँगे। वर्ना एक भी नहीं।

: ६ :

४ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

कल गांधीजी से फिर आर० टी० सी० के काम के संबंध में चर्चा छेड़ी। मैंने आश्चर्य प्रकट किया कि "सरकार आपको क्या समझ कर बुला रही है? आप क्या माँगनेवाले हैं, यह तो सरकार जानती है। करांची का प्रस्ताव भी सामने है। फिर भी आपको बुलाती है, इसके यह माने हैं कि आपकी माँग पूरी होनेवाली है।" गांधीजी ने कहा, "मैंने तो कोई बात छिपाकर नहीं रक्खी है। इर्विन से समझौता हो चुका, उसके बाद रात ८ बजे इर्विन से मैंने कहा—देखो, मुझसे समझौता करते ही मुझे लंदन क्यों भेजते हो? मेरी माँग तो जानते हो। वह तुमसे पूरी होनेवाली नहीं है, इसलिए मुझे भेजने से फ़ायदा?" इर्विन ने कहा कि तुम्हारी माँग कुछ भी हो, तुम न्याय-मार्ग पर ही चलोगे, ऐसा मानकर तुमसे जाने का आग्रह करता हूँ। फिर मैंने चर्चा छेड़ी कि हाँ, माँग किस तरह रक्खी जाय। गांधीजी ने कहा, "ग्रामीण की तरह सीधी-सादी भाषा में। यदि वहाँ कोई लंबी-चौड़ी बातें करेगा, राजवधारन की बारीकियों की बहस करेगा, तो मैं कह दूँगा कि मैं तो मूर्ख हूँ, ये बातें नहीं

जहाज पर गांधीजी : लेखक के साथ विनोद करते हुए

पूज्य मालवीयजी और मौलाना शौकत अली

समझता। किन्तु मैं फलाँ-फलाँ बात चाहता हूँ और मुझे ये दे दो। यदि मेरी बात कोई सुनना नहीं चाहेगा तो मैं कह दूँगा, मुझको क्यों बैठाके रखते हो, वापस हिन्दुस्तान भेज दो।" मैंने पूछा—वापस आने के पहले आप वहाँ सार्वजनिक व्याख्यान तो देंगे ही? महात्माजी ने कहा—"वह भी मैकडानल्ड या बाल्डविन चाहेगा तो ही, नहीं तो बन्द मुँह वापस चला जाऊँगा। मेरा स्वभाव यही है कि जिसके यहाँ रहना, उसका गुलाम बनकर रहना। आखिर उनका महमान बनके जाता हूँ और जबतक वहाँ रहूँगा, उनको क्षोभ हो, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता।" फ़ौज और अंगरेज़ व्यापारियों के स्वत्वों के बारे में भी काफ़ी बहस हुई। हर बात इनकी निराली है। हम लोग हर बात को सांसारिक दृष्टि से देखते हैं। यह तात्विक और धार्मिक दृष्टि से देखते हैं। १००-२०० साल भी लग जायँ तो चिन्ता नहीं, किन्तु स्वराज्य नहीं, रामराज्य ही चाहिए। बारीकी के साथ अध्ययन करता हूँ, तो ऐसा पता चलता है कि इनकी माँग जितनी ही बड़ी हो, उतनी ही उसमें कमी करने के लिए गुंजाइश है। समझाने के लिए यों कहना चाहिए कि १ मन मक्खन निकाले हुए दूध की अपेक्षा यह १ सेर मक्खनवाला दूध लेना पसन्द करेंगे। तादाद शायद घटा देंगे, किन्तु किस्म नहीं घटायेंगे। मैंने कहा कि अध्ययन कर लीजिए, नहीं तो कहीं बात बिगड़ जायगी। किन्तु गांधीजी कहते हैं कि "आर० टी० सी० में अबतक क्या हुआ, यह मैंने आजतक नहीं पढ़ा है, अब पढ़

लूँगा। विद्या मेरा बल नहीं है, न मुझे वहस करनी है। मुझे तो अपना दुःख रोना है, इसमें विद्वत्ता की कौनसी बात है ?" यह है भी सच, क्योंकि रोना और हँसना स्वाभाविक होता है। रोने में विद्वत्ता नाटकवाले ही दिखाते हैं। गांधीजी तो स्वाभाविक रुदन करना चाहते हैं।

इधर पंडितजी मुझसे कहते हैं कि अमुक विपय का अध्ययन करो, अमुक इतिहास को देख लो, अंग्रेज़ों की करेंसी नीति का इतिहास तैयार कर लो। मालवीयजी अनेक अस्त्र-शस्त्रों से लड़ेंगे, गांधीजी केवल एकही वाण से। मालवीयजी कहते हैं, वहाँ प्रचार-कार्य्य करेंगे। गांधीजी कहते हैं, प्रचार भी हमारे दुश्मनों की आज्ञा होगी, तभी करेंगे। विल्कुल नया ढंग, नया विचार, नया तरीक़ा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि लंदनवाले भी अचरज करेंगे कि कैसे आदमी से पाला पड़ा है!

कल लिखते-लिखते गांधीजी का दाहिना हाथ विल्कुल वेकार हो गया। अव वायें से लिखते हैं। रोज़ छः मील घूम लेते हैं। दूध १ सेर लेने लग गये हैं। गांधीजी कहते थे, चर्चिल से लंदन में अवश्य मिलना है; क्योंकि वह दुश्मनी रखता है, गालियाँ देता है। 'वर्नार्ड शॉ से मिलेंगे क्या?' यह पूछने पर कहा कि उससे क्या मिलेंगे!

: ७ :

५ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

भोपाल ने महात्माजी को बुलाकर कहा कि हिन्दू-मुसलमान-समस्या सुलझाने के लिए आप पृथक् निर्वाचन स्वीकार कर लें। महात्माजी ने कहा कि न तो मुझे पृथक् निर्वाचन से शिकायत है न संयुक्त निर्वाचन का मोह है, किन्तु मैं अंसारी के बिना कुछ भी न करूँगा। कहते थे, नवाब को यह बुरा-सा लगा। गांधीजी ने कहा कि, अपने मित्रों से मैं हर्गिज़ बेवफ़ाई नहीं करूँगा। अंसारी के पीठ-पीछे मैं कोई निर्णय नहीं करना चाहता। भोपाल ने कहा कि अंसारी को कैसे बुलावें? महात्माजी ने कहा कि लंदन जाकर उद्योग करो, मैं तो कर ही रहा हूँ।

दो घंटे तक फिर मेरे और महात्माजी के बीच निजी व राजनैतिक बातें हुईं। मेरा तो यह अनुमान है कि महात्माजी की माँग तो पूरी होनेवाली नहीं है, किन्तु इतना मिल जायगा, जिससे अन्य लोग संतुष्ट हो जायें। महात्माजी कहते हैं, यह भी अच्छा है। कहते थे, मेरी दूसरी लड़ाई ज़मींदारों, धनिकों व राजाओं से होगी, किन्तु वह लड़ाई मीठी होगी।

रात की प्रार्थना में अँगरेज़ भी आते हैं। अधिक नहीं सिर्फ़ ५–७। एक मुसलमान ने पूछा—'प्रार्थना से फ़ायदा?' महात्माजी ने कहा—"मुझमें कुछ अक्ल मानते हो, तो समझ लो कि लाभ के लिए ही प्रार्थना करता हूँ।" महात्माजी ने बताया कि उन्हें न ईश्वर में विश्वास था, न प्रार्थना में और पीछे उनको इसका ज्ञान हुआ। अब यह हाल है कि उनके शब्दों में "मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता; पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊँ।" उन्होंने कहा कि "मेरा सारा-का-सारा जीवन प्रार्थनामय ही है और इसका सुख इस मार्ग में जाने से ही अनुभव हो सकता है। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तीनों ने प्रार्थना की सार्थकता स्वीकार की है। मैं ईश्वर का दर्शन नहीं करा सकता। ईश्वर अनुभवगम्य है इसलिए अनुभव से ही जाना जा सकता है। प्रार्थना-द्वारा उसका अनुभव होता है। जो अनुभव लेना चाहता है, जिसे शान्ति की आवश्यकता है, वह प्रार्थना करे।"

: ८ :

६ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

आज रविवार को जहाज़ के गिर्जे में प्रार्थना थी। कप्तान ने महात्माजी को न्यौता दिया था। पंडितजी और हम भी गये थे। भजन, ध्यान, गुणगान होता रहा। पंडितजी का हाथ में बाइबिल लेकर ईसाइयों के साथ ध्यानावस्थित होना विचित्र था। पंडितजी को जो कोई लकीर का फकीर बताता है, वह मूर्ख है। पंडितजी अरब का पानी पी सकते हैं, गिर्जे में प्रार्थना कर सकते हैं, फिर भी परम सनातनी हैं, क्योंकि उनके हृदय में ईश्वर विराजमान हैं। जो हो, पंडितजी का बाइबिल हाथ में लिये हुए ध्यानमग्न होना, यह दर्शन दुर्लभ है।

गांधीजी को कप्तान ऊपर ले गया और वहाँ जहाज़ का संचालक चक्कर उनके हाथ में देकर उनसे जहाज़ चलवाता रहा। किसीने मज़ाक में कहा कि हिन्दुस्तान के जहाज़ का गांधीजी संचालन कर रहे हैं।

स्वेज़ और पोर्ट सईद में अरब लोग आयेंगे और गांधीजी का सत्कार होगा। स्वेज़ में प्रवेश होते ही जाड़ा शुरू हो गया। कल तक तो बेहद गर्मी थी।

: ९ :

७ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

स्वेज़ नहर पहुँचने पर काफ़ी चहल-पहल मच गई। जहाज़ पर मुसाफ़िरों की डाक्टरी परीक्षा ली गई। परीक्षा का तो केवल नाम था। डाक्टर मिश्र-सरकार की ओर से आया था, वह मुसाफ़िरों को केवल देख लेता था और पास कर देता था। अन्त में गांधीजी की पार्टी आई तो डाक्टर उठ खड़ा हुआ और हाथ मिलाकर कहने लगा कि मेरी इस किताब में आप अपने हाथ से दो शब्द लिख दें। इस तरह गांधीजी की शारीरिक परीक्षा समाप्त हुई। इसके बाद जहाज़ पर मिश्र के राष्ट्रीय नेता, अख़बारनवीस, फोटोग्राफ़र पहुँचे। प्रायः लोग गांधीजी से हाथ मिलाकर उनके हाथ चूमते जाते थे। जहाज़ पर बड़ी भीड़ हो गई। जहाज़ छूटने का समय आया, तब बड़ी मुश्किल से लोगों को किनारे उतारा। चित्र उतारनेवालों ने तो ज्यादती शुरू कर दी। एक क्षण गांधीजी को आराम से नहीं बैठने दिया। जिधर मुंह फेरें, उधर ही चित्रवाले अपना चित्रयंत्र लिये झपटने को तैयार। कम-से-कम २००-३०० चित्र लिये होंगे। लंदन के "डेली टेलीग्राफ" का प्रतिनिधि भी आया था।

उसने भी बहुत-से प्रश्न किये। अन्त में जहाज़ चला। कुछ प्रतिनिधि तो साथ हो लिये, जो रात भर सफ़र कर सुबह पोर्ट सईद में उतरे।

रात की प्रार्थना के समय मिश्र के बहुत-से प्रतिनिधि प्रार्थना में भी शरीक हुए। एक जर्मन ने अहिंसा के संबंध में महात्माजी से प्रवचन करने को कहा, जिस पर महात्माजी ने आध घंटे तक अत्यन्त सुन्दर प्रवचन किया। मिश्रवाले उसे अपनी भाषा में लिखते जाते थे। जबतक महात्माजी सो न गये तबतक महात्माजी की हर बात को, हर क्रिया को मिश्रवाले नोट करते रहे। मैंने उनसे मिश्र का हाल पूछा। मालूम हुआ कि मैं पिछली बार आया था उसके बाद उन्होंने कोई उन्नति नहीं की है। दृढ़, निःस्वार्थ नेताओं की कमी है, तो भी नहास पाशा का काफ़ी आदर है। नहास पाशा ने महात्माजी को प्रेम-भरा एक स्वागत का तार भी भेजा है और लौटती बेर काहिरा पधारने की प्रार्थना की है।

सुबह पोर्ट सईद में भी काफ़ी लोग आये। शौकतअली पिछले जहाज़ से उतरकर मिश्र में और फ़िलस्तीन में भ्रमण कर रहे थे। वह भी हमारे जहाज़ में आज सवार हो गये हैं। सुना है कि वह मुस्लिम मुल्कों में मुसलमानों का संगठन करने के लिए दौरा करने गये थे। गांधीजी की निन्दा की और इधर के मुसलमानों के साथ ऐक्य करने के लिए प्रयत्न किया। मिश्रवाले कहते थे कि इनका कहीं स्वागत नहीं हुआ। नहास पाशा ने तो कुछ खरी बातें भी सुना दीं। इस तरफ़ के मुसलमान राष्ट्रवादी हैं। मज़हबी पागलपन उनमें नहीं

है। इसलिए मौलाना साहब का रंग फीका ही रहा।

पंडितजी के विषय में यहाँ छपा है कि पंडितजी कीचड़ की एक मटकी लाये हैं और रोज़ कीचड़ का एक बुत बनाकर पूजा करते हैं। पीने का पानी गंगा का आता रहेगा, जिसका कुल खर्च १५,०००) बैठेगा, जो उनके एक धनी मित्र ने दिया है।

स्वेज़ के किनारे-किनारे कहीं-कहीं अरब लोगों की भीड़ मिलती थी जो चिल्लाकर महात्माजी का स्वागत करती थी।

पोर्ट सईद में लोग महात्माजी के लिए फल-फूल लाये थे, जिनमें ताज़ा आम और खजूर भी थे। आम उतने स्वादिष्ट नहीं होते, जितने अपने यहाँ के, किन्तु खजूर देखने में अत्यन्त सुन्दर थे—खाने में भी होंगे।

: १० :

६ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

अभी-अभी मौलाना मुझसे बातें कर गये हैं। मैंने पूछा कि जनाब की सेहत का क्या हाल है ? कहने लगे—'ज़िन्दा तो हूँ।' मैंने कहा कि "आप आ गये यह खुशनसीबी है। अब लंदन पहुँचने से पहले इस झमेले को तय कर लीजिए; वर्ना दोनों क़ौमों की बर्बादी होनेवाली है।" मौलाना ने कहा—"छोटा-सा मसला है, गांधीजी के हाथ में है।" मैंने कहा कि "सब कुछ आपके हाथ में है। नवाब साहब भी साथ हैं, अंसारी को बुलवा लें और बैठकर तसफ़िया करलें।" पर होना-जाना कुछ है नहीं।

भोपाल ने फिर गांधीजी को बुलवाया। शौकतअली भी मौजूद थे। ४ घंटे तक बातचीत हुई, पर कोई नतीजा न निकला। महात्माजी ने पूछा कि तुम जो कुछ कहते हो उसे मैं मान भी लूँ, तो तुम्हारा रुख़ लंदन में राष्ट्रीय मांगों के प्रति क्या होगा ? शौकतअली ने कहा कि मैं तो सरकार का ही साथ दूंगा।

दूसरे दिन मालवीयजी को भी भोपाल ने बुलवाया। आर० टी० सी० में मालवीयजी का क्या रुख़ रहेगा, इसीकी

चर्चा थी। पंडितजी ने कह दिया कि "जीवन-मरण का प्रश्न है, मैं लंदन इसलिए नहीं आया कि पौने सोलह आना लेकर जाऊँ। गांधीजी का हर्गिज़ साथ न छोड़ूंगा।" भोपाल ने कहा—'फिर तो बात टूटेगी।' पंडितजी ने कहा कि, चाहे जो हो।

लंदन से एण्डरूज़ का तार आया है कि सरकार की राय है कि महात्माजी फ़ोकस्टन (लंदन से ८० मील पर एक शहर) में उतरकर वहीं से बजाय रेल के मोटर में आवें। महात्माजी ने तार दे दिया कि मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लंदन में बहुत भीड़ होने की संभावना है। सरकार नहीं चाहती कि ऐसा स्वागत हो, इसीलिए यह चाल है।

सप्रू का भी तार आया है कि रविवार १३ की रात को आपको प्रधान एवं अन्य प्रतिष्ठित आदमियों से मिलना है। महात्माजी कहते थे कि उसी रात को मैं तो अपना दाँव फेंक दूंगा और फिर आवश्यकता होगी तो दूसरे स्टीमर से ही लौट आऊँगा। उनके स्वागत को रोकने के लिए उन्हें मोटर द्वारा बुलाया गया है, इससे तो मुझे नीयत साफ़ नहीं दीखती।

: ११ :

११ सितंबर, '३१

ट्रेन में

आज सुबह मारसेल्स पहुँचे। वही पुरानी बात। सैकड़ों चित्र खेंचनेवाले अपने यंत्र लिये और बीसों पत्र-प्रतिनिधि मौजूद थे। स्टीमर पर आने की इजाज़त नहीं थी। तो भी भीड़ काफ़ी थी। लंदन, अमेरिका, जर्मनी, नारवे आदि के पत्र-प्रतिनिधि खूब आये थे। सबने भिन्न-भिन्न प्रश्न किये। लंदनवाले तो छिद्र-अन्वेषण करने को ही आये हैं, और खूब झूठी-मूठी खबरें बनाकर भेजते हैं। मिश्र से तो एक फ़ौजी अफ़सर ने महात्माजी को एक चोली भेजी है और कहा है कि तुम इसे पहन लो। महात्माजी ने उसे रख लिया है।

११ बजे महात्माजी जहाज़ से नीचे उतरे और शहर में फ़्रान्स के छात्रों ने जहाँ मीटिंग की थी, वहाँ गये। बीच में जहाँ-जहाँ गाड़ी रुकती, वहाँ-वहाँ लोगों की भीड़ जमा हो जाती, और 'गांधी चिरजीवी हो' की ध्वनि होती। लोगों को गांधीजी के दर्शन का काफ़ी कौतूहल था। मीटिंग में बहुत आदमी नहीं थे। प्रवेश-पत्र के बिना सभा-भवन में प्रवेश निषिद्ध था, किन्तु बाहर ख़ासी भीड़ थी। यहाँ

के सार्वजनिक उत्सवों में चित्र-यंत्रवालों और पत्र-प्रतिनिधियों की बहुतायत रहती है। सो यहाँ भी थी। यों कहना चाहिए कि गांधीजी के रोज़ के चित्रों का औसत क़रीब २०० पड़ जाता है। और १०–१५ पत्र-प्रतिनिधि वक्तव्य ले जाते हैं। पत्र यहाँ व्यापार की दृष्टि से ही चलाते हैं और जो प्रतिनिधि आते हैं, वे सच्ची ही खबर नहीं भेजते। झूठ तो प्रायः सभी लिखते हैं, किन्तु जो मित्र हैं वे भी अच्छी बातें बनाके लिखते हैं। उदाहरण के लिए, एक अमेरिकन पत्र-प्रतिनिधि ने हाल में लिखा कि गांधीजी इतने दयालु हैं कि पास में रहनेवाली बिल्लियों को भी साथ में सुला लेते हैं। एक अंगरेज़ पत्रकार ने, जो विरोधी दल का है, लिख मारा कि "गांधीजी जहाँ जाते हैं, अंगरेजों को गालियाँ देते हैं। अबतक इनका कहीं सम्मान नहीं हुआ, इसलिए इनका चेहरा उतर गया है। क्रोध से भरे रहते हैं। विलायती कपड़ों का ही उपयोग करते हैं, देशी तो केवल दिखाने के लिए हैं," इत्यादि, इत्यादि। यह पत्रकार साबरमती-आश्रम में कुछ दिन ठहरा था, वहाँ इसकी बीमारी में गांधीजी ने अपने हाथ से इसकी सेवा की थी। मारसेल्स से जब चले तो दसों पत्रकार साथ में ही गाड़ी में बैठ गये। उनमें यह भी था। गांधीजी ने उसे अपने डिब्बे में बुलाया और खूब डाँटा। वह भी शर्म के मारे बर्फ़ तो हो गया, पर अपनी आदत से शायद बाज़ न आयेगा।

: १२ :

१२ सितंबर, '३१

लन्दन

पेरिस गाड़ी सुबह ६ बजे पहुँची। वहाँ भी वही भीड़, वही चित्रवाले, वही प्रेस-प्रतिनिधि !

११ बजे गाड़ी बूलों पहुँची। यहाँ से इंग्लिश चैनल पार कर हमलोग १ बजे फ़ोकस्टन पहुँच गये। फ़ोकस्टन में भी खूब भीड़ थी, किन्तु पुलिस के प्रबन्ध के कारण कोई जहाज़ तक पहुँच नहीं पाता था। वहाँ दो सरकारी गाड़ियाँ आई थीं। एक में गांधीजी बैठ गये, एक में मालवीयजी और मैं। पर पुलिस ने ऐसा जाल रचा था कि दोनों गाड़ियों को शुरू से ही अलग-अलग रास्तों से लंदन को रवाना किया। लंदन के निकट पहुँचने पर पंडितजी ने गाड़ीवान से कहा कि 'मुझे पेशाब करना है', पहले मुझे आर्यभवन ले चलो। गाड़ीवान ने कहा कि "महाशय, मुझे हिदायत है कि सीधे आपको सभास्थल पर ले जाऊँ। (पेशाब रास्ते में ही कहीं करा सकता हूँ) मैं आर्यभवन नहीं जा सकता।" मुझे ऐसा मालूम हुआ कि हमलोग कैदी हैं। हमें कैसा स्वराज मिलनेवाला है, इसकी कल्पना इस स्वागत से ही की जा सकती है। हज़ारों आदमी विक्टोरिया स्टेशन

पर, यह जानते हुए भी कि गांधीजी रेल से नहीं आयेंगे, जमा थे और यद्यपि वर्षा हो रही थी, फिर भी हज़ारों आदमी सभा-भवन के बाहर गांधीजी की बाट जोह रहे थे।

यह जान लेना आवश्यक है कि इंग्लिस्तान भी एक नहीं है। एक इंग्लिस्तान है दीन-दुखियों का, ग़रीब साधारण जनता का, दरिद्र-नारायण का—जो गांधीजी का स्वागत कर रहा है; जिसे न हिन्दुस्तान से द्वेष है, न जिसका यहाँ कोई चलन है। दूसरा इंग्लिस्तान है ठाकुरों का, जो हुकूमत करते हैं और जिनके हाथ में ही सत्ता है। यों कहा जा सकता है कि यदि इस श्रेणी के दस आदमी भारत को स्वराज देना चाहें तो दे सकते हैं। जो गांधीजी का 'हुर्रेहुर्रे' करके स्वागत करते हैं, वे हज़ारों होने पर भी पंगु हैं। राज अब भी यहाँ ठाकुरों का ही है। कहने के लिए ही मज़दूर-पार्टी है और मज़दूर-सरकार थी। मज़दूर-सरकार ने भी जब चीं-चपड़ की तो सेठों ने उधार देने से इन्कार कर दिया, जिससे मैकडानल्ड साहब को होश सँभालना पड़ा। 'गाँव राम' का स्वागत ठीक है, पर 'ठाकुरों' की नीयत अच्छी नहीं।

सभा-भवन में १५०० के लगभग आदमी थे, जिनमें ६०० के क़रीब देशी थे। स्वागताध्यक्ष का व्याख्यान अच्छा था, किन्तु गांधीजी का भाषण तो अपूर्व था। लोग बिल्कुल मोहित हो गये। बैठे-बैठे हज़ारों हैट-धारियों के बीच कमली ओढ़े गांधीजी का प्रवचन ऐसा हुआ मानो अँगरेज़ों का ईसा-मसीह बोल रहा हो। गांधीजी ने कहा, "तुम्हारी सरकार इस समय अपने आय-व्यय का हिसाब बराबर कर रही है,

इसलिए बड़ी व्यस्त है, किन्तु जबतक हमारा हिसाब बराबर न करोगे तबतक तुमने कुछ नहीं किया, ऐसा समझना होगा। मैं देश-भक्त हूँ, किन्तु मेरी देश-भक्ति जीव-भक्ति है। मैं सबका भला चाहता हूँ।" इन बातों पर तालियों की गड़-गड़ाहट हुई।

स्वागत के बाद गांधीजी अपने डेरे गये, जो मज़दूर-मुहल्ले में है। पंडितजी आर्य-भवन में आ गये। सभा-भवन से निकले, तो पंडितजी गद्‌गद हो गये थे। एकान्त में मुझसे कहते थे कि "गांधीजी के शरीर की मुझे बड़ी चिन्ता है, यह कपड़े नहीं पहनते, कहीं इनको कुछ हो न जाये। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि रोग हो तो मुझे हो, मौत आये तो मुझे आये।" मैंने कहा कि पंडितजी, आप अपनी ही चिन्ता करें, इनकी नहीं। पंडितजी बम्बई छोड़ने के बाद काफ़ी दुर्बल हो गये हैं और ढीले होते जाते हैं। इनके शरीर की मुझे तो बड़ी चिन्ता है।

: १२ :

१३ सितंबर, '३१

लन्दन

गांधीजी का स्थान बहुत छोटा है, आराम भी नहीं है, किन्तु लोग प्रेम से उनकी सेवा कर रहे हैं। बिना तनख्वाह के नौकर हैं। अखबारवाले बिना पैसे लिये अखबार दे जाते हैं। सैकड़ों आदमी मकान के सामने खड़े जय-जयकार करते रहते हैं।

आज रात को प्रधानमंत्री से बातें होंगी और शायद कल तक नाड़ी का पता चल जाये।

गांधीजी सरोजिनी नायडू के साथ अपने दफ्तर से परिषद् में जाते हुए

: १४ :

१५ सितंबर, '३१

लन्दन

आज शाम को भोजन के बाद हम लोग किंग्सले हाल पहुँचे। मुझे खासकर तीन बातों के सम्बन्ध में महात्माजी का विचार जानना था। पहला प्रश्न तो यह था कि यहाँ से हट चलने की राय अब होती है क्या? देवदास ने कल टेलीफोन किया था कि बापू कुछ-कुछ स्थान-परिवर्तन के पक्ष में हो चले हैं और सम्भव है कि आर्य-भवन में धूनी रमा दें। किंग्सले हाल आना-जाना आसान काम नहीं है। भारत-वासी-मात्र चाहते हैं कि महात्माजी के और उनके बीच इतनी दूरी न हो। पर स्थान बदलने के पक्षपाती इससे भी जोरदार दलील पेश करते हैं। किंग्सले हाल एक सार्वजनिक संस्था है। महात्माजी के वहाँ ठहरने से इस संस्था के कार्य में विघ्नबाधा पड़ रही है। कार्यकर्त्ताओं की संख्या थोड़ी है, उनपर बोझ बहुत भारी आ पड़ा है। अभी उस दिन टेलीफ़ोन पर रहनेवाले की ओर से दबी ज़बान शिकायत हुई थी कि मुझे साँस लेने की भी फ़ुरसत नहीं मिल रही है। मैंने उस दिन इस संस्था की परिचालिका मिस लेस्टर से बातें की थीं—अन्य कार्यकर्त्ताओं से भी कहा

था कि हम लोग हाथ बँटाने को तैयार हैं। पर लेस्टर बराबर यही कहती जाती है कि हमें कोई कष्ट या असुविधा नहीं है। अगर होगी तो कह देने में हमें कुछ भी संकोच न होगा। महात्माजी के लिए इतना ही बस है। उनके सामने और दलीलें भी पेश की गईं—लेस्टर की आपमें पूरी भक्ति है, पर भारतवर्ष के राजनैतिक आन्दोलन से उसकी पूरी सहानुभूति नहीं; इस संस्था के सभी ट्रस्टी आपको उस दृष्टि से नहीं देखते जिस दृष्टि से लेस्टर देखती है, इत्यादि, इत्यादि। पर इनका महात्माजी पर कुछ भी असर न पड़ा। आज मेरे पूछने पर वह कहने लगे :

"आज फिर मेरी लेस्टर से इस सम्बन्ध में बातें हुई हैं। मैंने उससे कहा कि मेरे यहाँ रहने से तुम्हारी संस्था की किसी प्रकार की क्षति हो या तुम लोगों को किसी कठिनाई का सामना करना पड़े तो मुझे स्पष्ट बता देना। तुम्हारे और मेरे बीच संकोच का पर्दा नहीं रहना चाहिए। पर लेस्टर ने फिर मुझे विश्वास दिलाया कि आपके यहाँ रहने से न तो हमलोगों को कष्ट है, न हमारी संस्था के काम में बाधा पड़ रही है, बल्कि आपके रहने से इसका खासा उपकार हुआ है। कुछ ऐसे लोग, जो इससे विमुख या हमारे विरोधी हो रहे थे, अब हमारे यहाँ आने लगे हैं और हमारा साथ दे रहे हैं। लेस्टर की बात का मुझे विश्वास है और मैं यहाँ से अन्यत्र जाने का विचार नहीं करता।"

यह ग़रीबों का मुहल्ला है और इसमें सन्देह नहीं कि इस श्रेणी के लोगों के हृदय में गांधीजी के प्रति प्रेम का समुद्र

उमड़ पड़ा है। भाव के भूखे महात्माजी इनसे अलग होने का अभी कोई कारण नहीं देखते।

मीराबेन और लेस्टर एक दूसरी से कुछ खिची-सी रहती हैं। इसकी चर्चा चलने पर महात्माजी ने कहा कि "मैं तो मीराबेन को ही दोष दूंगा। उसके मन में यह आता है कि जिस हद तक मैंने त्याग किया है, उसी हद तक दूसरे भी क्यों न करें। पर मनुष्य को अपने त्याग या तप का कुछ भी अभिमान नहीं करना चाहिए। मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, मैं करता हूँ—दूसरे अगर उस हद तक नहीं बढ़ सकते तो मैं उसका बुरा क्यों मानूं ? त्याग की राह पर क़दम रखनेवाले को आरम्भ में अभिमान-सा हुआ करता है, मुझे भी किसी समय हुआ था, पर मैं तो शीघ्र ही सँभल गया।"

महात्माजी के कानों तक लोगों की यह टिप्पणी भी पहुँच चुकी है कि लेस्टर अपनी संस्था का विज्ञापन करने के लिए ही उन्हें अपना अतिथि रखना चाहती है। इस विषय में महात्माजी ने कहा :—

"अगर वह ऐसा चाहती है और उसकी संस्था का कुछ विज्ञापन होता है तो क्या हर्ज है ? आखिर उसका और उसकी संस्था का व्रत तो दीन-दुखियों की सेवा करना ही है।"

दूसरा प्रश्न शार्टहैंड टाइपिस्ट के विषय में था—उसे कब से आना होगा ? उत्तर मिला कि "अभी उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। लिखने-लिखाने का समय ही कहाँ मिलता है ? लेख के रूप में जो कुछ सामने आता है उसको 'पास' कर देता हूँ। महादेव की भाषा तो मेरे 'अनुकूल' हो

गई है। उसकी लिखावट भी अच्छी होती है। पर प्यारेलाल में यह वात नहीं है। उसके अक्षर वहुत ख़राव होते हैं और उसकी भाषा भी पूरी सन्तोषजनक नहीं होती। विद्वान् तो अच्छा है, पर उसकी भाषा या रचना वरावर एक-सी नहीं होती। जव उसका ध्यान अपने विषय पर केन्द्रीभूत रहता है तव तो अच्छा लिख लेता है, नहीं तो त्रुटियाँ रह जाती हैं।"

सुना था कि कान्फ्रेंस आने-जाने के लिए मोटर की नई व्यवस्था आवश्यक है, पर पूछने पर मालूम हुआ कि यह खवर भी ग़लत है। एक हिन्दुस्तानी डाक्टर ने महात्माजी को पहुँचाने का काम अपने ज़िम्मे ले रक्खा है। कल ग़लती से उनकी मोटर एक दरवाज़े पर खड़ी रही और महात्माजी दूसरे दरवाज़े से वाहर निकले। लाचार टैक्सी से आना पड़ा। जव महात्माजी को पीछे मालूम हुआ कि डाक्टर साहव की गाड़ी मौजूद थी, तव उन्हें इसका खेद हुआ। कहते थे कि मेरा मौन का दिन था, इसलिए पूरी तहक़ीकात न करा सका—महादेव से पता न लग सका कि गाड़ी किधर खड़ी है। व्यर्थ एक कौड़ी भी खर्च न हो, इसका महात्माजी को पूरा ध्यान रहता है। फिर भी उन्होंने कुछ पैसे वचा ही लिये। मालवीयजी के लिए भी टैक्सी करनी थी, सो उन्हें अपनी टैक्सी में ही आर्य-भवन छोड़ते आये। पर आगे के लिए उन्होंने कहा कि भाड़े की गाड़ी की कोई ज़रूरत नहीं है।

मैंने कहा—तो तीनों वातों के सम्वन्ध में मुझे जो सूचना मिली थी वह ग़लत निकली।

महात्माजी—विल्कुल ग़लत !

में—तीनों-की-तीनों अखवारी खवरें सावित हुईं ?

महात्माजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

× × ×

आज की कान्फ्रेंस में महात्माजी का जो भाषण हुआ है, उसकी चर्चा छिड़ी। सभी मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा कर रहे हैं और कहते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह अमर होगा। कान्फ्रेंस में जाने से पहले महात्माजी भारत-सचिव से मिले थे। उसका रुख उन्होंने अच्छा पाया। महात्माजी ने उसे स्पष्ट-से-स्पष्ट शब्दों में यह वताया कि वह ब्रिटिश शासन-पद्धति के परम अनुरक्त भक्त से उसके कट्टर शत्रु कैसे वन गये। उन्होंने कहा कि "एक समय था जव मैं तुम्हारे शासन को अपने देश के लिए हितकर समझता था और उसकी भलाई मनाता था। मेरा दावा है कि संसार में शायद ही कोई दूसरा मनुष्य होगा, जिसने मेरी ही तरह पवित्र और निःस्वार्थ भाव से तुम्हारा साथ दिया होगा—तुम्हारा भला चाहा होगा। फिर क्या कारण कि मैं आज दोस्त से दुश्मन वन गया हूँ और तुम्हारी जड़ सींचने के वजाय उसे खोदने में दिन-रात लगा हुआ हूँ ?" होर ने कहा—"महात्माजी, मैं तो संस्कार से ही दूसरे मत का अनुयायी हूँ। मेरी शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार की हुई है कि मेरी जाति ने भारतवर्ष में जो कुछ किया है, उसका मुझे गर्व है।" महात्माजी ने उत्तर दिया—"तुम्हें गर्व होगा, पर होना नहीं चाहिए। भारतवर्ष की इस समय जो दशा है और दिन-दिन होती जा रही है, वह तुम्हारे लिए अभिमान की नहीं, लज्जा की वात है। वरसों से मेरा

अपने देश की जनता से घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा है। गाँवों में घूमना-फिरना, ग्रामीण लोगों के साथ उठना-बैठना, उनके सुख-दुख में शामिल होना, उनकी कठिनाइयों की जाँच-पड़ताल कर उनकी पूरी जानकारी हासिल करना—इन बातों में तुम्हारा एक भी कर्मचारी मेरी बराबरी नहीं कर सकता। मैंने अपनी आँखों देखा है कि मेरे इन देशवासियों की कल क्या हालत थी और आज क्या है, और बहुत कुछ कटु अनुभव प्राप्त करके मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि तुम्हारे हाथों हमारी भलाई नहीं हो सकती।" होर ने कहा कि अभी तो हमारे समझौते के प्रयास का आरम्भ ही हो रहा है; अन्त होने से पहले आपसे बहुत कुछ बातें करनी हैं। महात्माजी को इसके बाद ही कान्फ़्रेंस में जाना और अपना वक्तव्य सुनाना था। होर ने कहा कि मैं चाहता तो नहीं था कि आज आपको कुछ भी कष्ट दूँ, पर साथ ही आपसे यथा-संभव शीघ्र मिल लेना भी आवश्यक था। महात्माजी के ठहरने के स्थान के विषय में पूछताछ की। उन्होंने कहा कि मैं अपने ग़रीब भाइयों के बीच बड़े सुख से हूँ। होर बोला कि इंग्लैण्ड का वास्तविक जीवन भी ग़रीब लोगों का ही जीवन है। उसकी बातचीत के ढंग से महात्माजी को सन्तोष हुआ। कहते थे कि "उसने न तो हाकिम-हुक्काम की तरह रूखे-सूखे शब्दों में बातें कीं, न कूटनीति की भाषा का ही उपयोग किया। मैंने उससे कहा कि मुझसे यह आशा मत करो कि मेरी ज़बान कभी भी मेरे मन की बात छिपाने की कोशिश करेगी। हाँ, मैं यह सर्टिफ़िकट ज़रूर चाहता हूँ कि समझौते

के लिए मैंने कुछ भी उठा न रक्खा। उसने कहा कि मैं भी आपसे ऐसी ही सर्टिफ़िकट पाने का इच्छुक रहूँगा।"

मैं—"तो यह मान लूँ कि उससे आपकी जो बातचीत हुई वह आशाप्रद थी?"

सिर हिलाते हुए महात्माजी ने कहा कि "नहीं! इतना ही कहूँगा कि मैंने यह आशा नहीं की थी कि वह मुझसे इस हद तक दिल खोलकर बातें करेगा।"

लार्ड सैंकी से होर की तुलना होने लगी। महात्माजी ने कहा कि उस पर भी मेरी बातों का अच्छा प्रभाव पड़ा है; पर इसमें सन्देह नहीं कि वह होर से कहीं अधिक चतुर और गम्भीर है, इसलिए उसके शब्दों से ही उसके हृदय की थाह मिलनी मुश्किल है। महात्माजी ने उसे एक चपत अच्छी लगाई। वह देशी नरेशों की बात करने लगा, तो महात्माजी ने कहा कि "क्या असलियत तुमसे छिपी है? क्या तुम नहीं जानते कि कान्फ्रेंस सरकार की हाँ में हाँ मिलानेवालों से भर दी गई है? क्या यह भी बताना आवश्यक है कि जिन नरेशों की तुम बात करते हो, वे सब-के-सब सरकार के इशारे पर नाचनेवाले हैं? मैं उन्हें या उनकी बातों को कुछ भी महत्त्व नहीं देता और जो सच्ची बात है वह तुम्हें भी मालूम है।" सैंकी से इसका कुछ भी जवाब न बन पड़ा।

महात्माजी के पैर जमते जा रहे हैं। उनकी चमक से दुश्मनों को भी चकाचौंध लग गई है। लार्ड रीडिङ्ग के पास से वह दो-तीन बार गुज़रे, तो वह खड़ा हो गया और उनसे मिलाप बातचीत करने की इच्छा प्रकट की।

वह मिले या न मिले, नैतिक रणक्षेत्र में इससे महात्माजी के पक्ष को ही सहायता पहुँचेगी।

लार्ड इर्विन को महात्माजी ने आते ही तार दिया था कि मैं पहुँच गया हूँ, तुम कब और कहाँ मिल सकते हो? कहते थे कि उसके उत्तर में उसने बड़ा ही सुन्दर पत्र लिखा है। कहा है कि मैं जान-बूझकर आर० टी० सी० में शरीक नहीं हुआ, क्योंकि मेरा ख़याल है कि मैं बाहर रहकर अधिक सहायता कर सकता हूँ। वह शीघ्र ही लन्दन आनेवाला है।

शिमले से एमर्सन ने भी महात्माजी के पत्र का बड़ा ही सन्तोपजनक उत्तर दिया है। महात्माजी ने उसे बड़ी फटकार बताई थी—उसे बहुत कुछ भला-बुरा कहा था। महात्माजी कहते थे कि उसका पत्र पढ़ने ही लायक़ है। उसने एक तार भी दिया था, पर वह किसी कारणवश महात्माजी को न मिल सका।

मैंने कहा कि "आपने अपना वक्तव्य सुना दिया। सबको मालूम हो गया कि आप क्या चाहते हैं—अब आगे क्या होगा? आप उनके उत्तर की प्रतीक्षा करेंगे या उत्तर मिले बिना भी कमेटी की कार्रवाई में भाग लेंगे?" महात्माजी ने कहा कि "मैं कार्रवाई में भाग लूँगा। जहाँ मैं देखूँगा कि कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित है, जो कांग्रेस के किसी मूल सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है और उसके विषय में कांग्रेस का मत स्पष्ट कर देना आवश्यक है, वहाँ मैं अपनी राय जाहिर कर दूँगा। उदाहरण के लिए—वोट देने के अधिकार का प्रश्न है। अनावश्यक बातों पर बोलने का विचार मेरा नहीं है। संकी

ओर ध्यान न दे सका। आज सुबह दो सज्जन मिलने आ गये। सोचा कि होर से मिलने इंडिया आफ़िस जाना है, रास्ते में कुछ सोच लूँगा। पर गाड़ी में एण्डरूज़ का साथ हो गया और रास्ते भर बातें होती रहीं। इंडिया आफ़िस में नियत समय से २० मिनिट पहले पहुँचा (कल महात्माजी को कान्फ़्रेंस पहुँचने में कुछ देर हो गई—भीड़ ज़्यादा होने के कारण गाड़ियों को रुक जाना पड़ता है, इसलिए आज समय बचाकर चले थे), पर वहाँ भी कुछ सोचने का समय न मिला, क्योंकि होर के दो सेक्रेटरी आ गये और उनसे बातें होती रहीं। बस, इतना ही सोच सका कि कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से मुझे बोलना है, इसलिए उसके विषय में कुछ कहना चाहिए। जो कुछ तैयारी कर सका वह इतनी ही!"

मैंने कहा कि बिना कुछ भी तैयारी के ऐसा अद्भुत भाषण हो, इसे तो दैवी अनुप्रेरणा ही समझना चाहिए।

महात्माजी बोले—"बिल्कुल ठीक है। लार्ड इर्विन से समझौता हो जाने पर मैंने पत्र-प्रतिनिधियों को जो वक्तव्य दिया था, यहां आने के दिन मेरा जो भाषण हुआ, अमेरिका के लिए अभी उस दिन जो संदेश देना पड़ा—इनमें किसीके भी लिए पहले से न तो कुछ तैयारी कर सका था, न कुछ सोच ही सका था। ऐन मौक़े पर हृदय में जो आकाशवाणी हुई, उसे दोहरा दिया। यह सब ईश्वर की अनुकम्पा का फल है।"

आगे क्या होगा ईश्वर जाने, पर आसार बुरे नहीं हैं। [illegible] की ओर से कोई बात अभी तक आशाप्रद

नहीं हुई है, पर जैसा कि गांधीजी ने कहा—उसका प्रभाव नहीं के बराबर रह गया है। अखबारों में अभी तक "मैन्चेस्टर गार्जियन" जैसी सचाई और सहानुभूति किसी दूसरे ने नहीं दिखाई, यद्यपि उसने भी भूलकर लिख दिया है कि महात्माजी ने लँगोटी त्यागकर पाजामा पहन लिया! महात्माजी यह सुनकर हँसने लगे। "डेली मेल" महात्माजी को सनकी (फेनेटिकल) लिखता जाता है, पर उसने भी तार द्वारा ३००० शब्दों का एक लेख इस आशय का माँगा है कि आप क्या चाहते हैं? साथ ही वचन दिया है कि लेख ज्यों-का-त्यों छपेगा—एक शब्द का भी हेर-फेर न होगा। महात्माजी ने उसे उत्तर दिया है कि अभी तो बहुत-सा काम है, पर समय मिलते ही मैं लेख भेज दूँगा।

: १५ :

१७ सितंबर, '३१

लन्दन

कल रात को महात्माजी से फिर मिला था। मुझसे कहा, मैन्चेस्टर साथ चलो। मैंने पूछा, वम्बई से तार आया है कि फेडरेशन के प्रतिनिधित्व का क्या होगा? उस पर महात्माजी ने कहा, मैं प्रधान मंत्री से कहनेवाला हूँ, किन्तु मेरे पाँव और जम जायँगे, तब कहना ठीक होगा। यदि यहाँ से भागना ही पड़े तो क्या लाभ है?

महात्माजी की शरीर-रक्षा के लिए काफ़ी खुफ़िया तैनात हैं। कल रात को खुफ़ियावालों ने आकर कहा कि "आपको तो कोई पर्वाह नहीं; किन्तु इंग्लैण्ड में रहते यदि आपका बाल भी बाँका हो जाये, तो हमारा मुँह काला हो जायेगा। इसलिए कृपया आप जहाँ जावें हमें सूचना दे दें, जिससे हमें आपका पीछा करने में सुभीता हो।" गांधीजी कहते थे कि भारत-सचिव ने भी उनसे ऐसा ही कहा। फलतः महात्माजी जहां जाते हैं, अपने दौरे की सूचना खुफ़िया को दे देते हैं।

एक ग्रामोफ़ोन कम्पनीवाला अपने रेकार्ड में महात्माजी का भाषण चाहता था। खूब बहस हुई। सारा मसला नीति

की कसौटी पर कसा गया। अन्त में माँग अस्वीकार की गई। कुछ दिन पीछे बहस-मुबाहसे के बाद यह माँग स्वीकार की गई।

क्लार्क कहता था, "मैन्चेस्टर को रोटी फेंक दो और भारत में रहनेवाले अंग्रेज़ व्यापारियों की दिलजमई कर दो तो तुम्हारा काम शीघ्र बन जाये।" किन्तु इनकी दिलजमई की जाये तो कैसे? इन्हें चाहिए मिश्री और हमलोग बातों से ही इन्हें मिठास का अनुभव कराना चाहते हैं!

: १६ :

२४ सितंबर, '३१

लन्दन

कल रात को हाउस ऑव कामन्स में महात्माजी का भाषण था। श्रोताओं में सभी लोग मौजूद थे। उपस्थिति २०० के क़रीब थी, जिसमें प्रायः १५० पार्लमेण्ट के मेंबर रहे होंगे। कई बारादरियों से गुज़र कर हम लोग सभा के स्थान पर पहुँचे। महात्माजी ने अपने भाषण में कहा कि "हम लोग क्या चाहते हैं और क्यों चाहते हैं, यह मैं एक नहीं अनेक बार बता चुका हूँ। हम 'पूर्ण स्वराज' से ही संतुष्ट हो सकते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकायेंगे। हम भागीदार होकर तुम्हारे साथ रहना चाहते हैं, गुलाम होकर नहीं। हमारी मर्ज़ी की बात होनी चाहिए—जबतक अपनी भलाई देखते हैं, तुम्हारे साथ रहेंगे;

संरक्षण चाहते हो। फिर जो कुछ देते हो उसका मूल्य ही क्या? तुम कहते हो कि सेना भारत की रक्षा के लिए रहेगी। वास्तव में उसका काम होगा भारत को पराधीन रखना, उसके हाथ-पाँव हिलने-डुलने न देना! हम अंग्रेजों को हर्गिज़ निकालना नहीं चाहते। पर हम यह जरूर चाहते हैं कि वे हमारे नौकर होकर रहें, मालिक होकर नहीं।"

इंगलैण्ड ने आखिर गोल्ड स्टैण्डर्ड छोड़ दिया। भारतवर्ष सोने से तो हट गया, पर स्टर्लिङ्ग से वह अभी तक बँधा हुआ है। शुष्टर ने शिमले में कुछ कहा और होर ने फेडरल कमेटी में कुछ! जान-बूझकर यहाँवालों ने पीछे बेईमानी की है। महात्माजी ने इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया, वह मुझे बहुत पसन्द न पड़ा। मेरे कहने से उसमें उन्होंने थोड़ा परिवर्तन भी किया। रात को इस विषय में उनसे फिर बातें हुईं। मैंने कहा कि आप ऐसे मामलों में बिना पूछे ही वक्तव्य दे देते हैं, यह कैसी बात है? बड़ी बहस हुई। महात्माजी की दलील थी कि मेरे शब्दों का वह अर्थ ही नहीं हो सकता, जो तुम करते हो। बोले कि "वकालत में जितनी अच्छी बातें सीखने को मिलती हैं, उन्हें मैंने ग्रहण कर लिया है। मैंने एक भी ऐसी बात नहीं रक्खी थी जिसके लिए कोई मुझे पकड़ सके।" ख़ैर, अन्त में यह ठहरा कि भविष्य में बिना सलाह लिये ऐसे विषय पर कुछ भी न कहेंगे।

सेक्रेटरी ऑव् स्टेट की ओर से एक पत्र आया था। उसका जवाब भेज दिया है।

मेरे विरुद्ध काफ़ी प्रचार किया गया है। इसका फल यह हुआ कि मेरा अविश्वास किया जाता है। हाँ, जब से कान्फ्रेंस का मेंबर बना हूँ तब से लोगों से मिलना-जुलना ज्यादा होता है।

अटल से मिला था। यहीं अचानक मुलाक़ात हो गई। इस सप्ताह लोथियन और बेन से मिला। अच्छी बातें हुईं। पर बातों से तो अब काम आगे नहीं बढ़ता।

पण्डितजी की तन्दुरुस्ती अच्छी है।

उस दिन श्री विट्ठलभाई पटेल महात्माजी के पास पहुँचे और कहने लगे कि फेडरल कमेटी में आपका जो भाषण हुआ, उसे पढ़कर तो मैं बेहोश-सा हो गया। यह आपने क्या कह डाला ? महात्माजी बोले कि "मैंने तो एक ही चार्ली चैपलिन का नाम सुना था, मुझे क्या खबर थी कि अपने यहाँ भी एक चार्ली चैपलिन है ! खैर, तुम लोगों को मेरा भाषण पसन्द नहीं है, तो तुम अपना मुख्तारनामा वापस ले सकते हो।"

महात्माजी की बातें निराली हैं। उस दिन कहते थे कि मुझे बच्चों के साथ खेलना जितना अच्छा लगता है, उतना आर० टी० सी० में शरीक होना नहीं लगता। ग़रीबों की मंडली ही महात्माजी की आर० टी० सी० है।

: १७ :

३० सितंबर, '३१

लन्दन

महात्माजी मैन्चेस्टर से लौट आये। वहाँ उनका अच्छा प्रभाव पड़ा।

हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न अभी तक हल नहीं हो सका है। आशा भी कम है। सोमवार (२८ सितम्बर ३१) को कान्फ्रेंस की अल्प-संख्यक-दल-कमेटी की मीटिङ्ग थी। प्रधान मंत्री ने उसमें प्रजा-प्रतिनिधियों को इस हिसाब से बिठाया—सबसे पहले श्रीमती नायडू, फिर गांधीजी, फिर मालवीयजी, फिर मैं।

प्रधान मंत्री का भाषण मुझे अच्छा नहीं लगा। उसमें ईमानदारी नहीं थी। खुशामद काफ़ी थी; हमारे दर्शन-शास्त्रों की भरपूर प्रशंसा भी थी, पर इन ऊपरी बातों के सिवाय और कुछ न था। महात्माजी के सामने, सभा-विसर्जन के बाद, उसने हाथ जोड़े और कहा कि कभी आपके आश्रम में आकर अपने पापों को धोऊँगा! मालवीयजी ने सर्वप्रथम दो दिन के लिए सभा स्थगित करने को कहा। मोहलत मिली भी, पर किसी से कुछ बन न पड़ा। गांधीजी और आगा खाँ में बातें ज़रूर चलती हैं, परन्तु उसका मोहलत से कोई सम्बन्ध

नहीं। कुछ "प्रतिनिधियों" का रुख लज्जित करनेवाला था। इनमें कोई कनफटे जोगी की तरह गाली देकर माँगता है, कोई दक्ष ब्राह्मण की तरह माँगता है, पर हैं दोनों भिखमंगे। यद्यपि यह स्पष्ट है कि ये ब्रिटिश सरकार के ही आदमी हैं और अपने मालिकों के मन की ही बात कहने-करनेवाले हैं तो भी आपस में कुँजड़ों की-सी लड़ाई शर्मानेवाली है।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के सम्बन्ध में गांधीजी की आगा [illegible] से तीन-चार घण्टे बातचीत हुई। उनकी तो वही पुरानी कहानी है कि अन्सारी को बुलाओ! काग़ज़ पर दस्तख़त भी करके दे आये हैं और कह दिया है कि जो कुछ अन्सारी कहेगा, मान लूँगा और देश से मनाने की पूरी कोशिश करूँगा। अब सबकी गर्दन अन्सारी के हाथ में है, पर महात्माजी कहते हैं कि इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। गांधीजी पर मुसलमान काफ़ी बिगड़े हैं कि अन्सारी को इतना वज़न क्यों? और अन्सारी को बुलानेवाले भी नहीं हैं, लेकिन जान पड़ता है कि टूटने की नौबत न आवेगी। अगर टूट भी जाये, तो हमारा बुरा नहीं है। आज फिर गांधीजी मुसलमानों से मिलनेवाले हैं। कुछ लोगों का प्रस्ताव था कि अंग्रेज़ों की पंचायत से निपटारा करा लिया जाये। किन्तु पंडितजी और गांधीजी की राय कम है। यह सही भी है। जहाँ ऐसी पंचायत का प्रस्ताव किया, वहाँ हमारी कमज़ोरी साबित हो जावेगी और हम स्वराज माँगने के लायक़ नहीं रहेंगे।

[illegible] से मिला था। यह पार्लमेण्ट का मेंबर है। कहता [illegible] कि [illegible] लेन-देना नहीं है, [illegible] इनके [illegible] कर देंगे।

उसका खयाल है कि नये चुनाव में कन्ज़र्वेटिव बड़ी तादाद में आ जायेंगे और सब तरह से दमन करेंगे। मेरे पूछने पर उसने कहा कि आवश्यक हुआ तो यहाँ से पैसे और फ़ौज दोनों ही भेजे जायेंगे। अध्यापक हैरल्ड लैस्की (लन्दन-विश्वविद्यालय में राजनीति-विज्ञान का अध्यापक और इस देश का एक प्रसिद्ध विद्वान्) का मत और है। उसने कहा कि यहाँ की सेना अधिक काल तक वहाँ ऐसे काम के लिए नहीं ठहर सकती। लैस्की से अर्थशास्त्र-सम्बन्धी बातें काफ़ी हुईं। हमारे राजनैतिक मसले पर भी बातचीत हुई। उसका भी यही कहना है कि कुछ होनेवाला नहीं है। लैस्की का खयाल है कि यहाँ भयंकर स्थिति पैदा होनेवाली है। कल एक बहुत बड़ा जुलूस निकला था, जिस पर पुलिस की लाठियाँ बरसी थीं। कम्यूनिस्ट पार्टी ज़ोर पकड़ती जा रही है।

कल महात्माजी ने कहा कि पंडितजी को हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न के सम्बन्ध में समझाओ। मैंने निवेदन किया कि आपकी आत्मा जो कहे आप कर लें। पंडितजी भी मान जायेंगे।

कल भारत-मंत्री से महात्माजी की तीन घण्टे तक बात-चीत हुई। महात्माजी ने कहा कि "समय बरबाद न करो; देने के सम्बन्ध में या तो सीधी-सीधी बातें करो या वापस जाने दो। मुझे इससे कुछ भी दुःख न होगा, पर समय की बरबादी से होगा।" होर ने कहा कि आपको व्यर्थ न रोकूँगा। उसका भी विचार है कि कान्फ़्रेंस में कुछ तय होना नहीं है। उसने छोटी-सी कमेटी का प्रस्ताव किया तो महात्माजी बोले कि "मैं पहले से ही जानता हूँ कि कान्फ़्रेंस द्वारा कुछ तय होनेवाला

नहीं है। मैं तो तुम्हारे निमंत्रण के कारण इसमें शरीक हुआ हूँ। पर कमेटी में भाग लेने से पहले यह तय कर लेना ज़रूरी है कि तुम कहाँ तक जाने को तैयार हो। पहले मूल सिद्धान्तों पर हम सहमत हो लें, फिर और बातें कर लेंगे।"

हॉर—मैं पहले इर्विन से बातें करूँगा। आपकी तरह हमारे भी आदर्श हैं, पर आपकी तरह हम यह नहीं मानते कि हिन्दुस्तान में हमसे इतनी ज़्यादा बुराई हुई है। हमसे बहुत कुछ भलाई हुई है। वर्तमान स्थिति में हम आपको सेना और अर्थ-विभाग का अधिकार कैसे दे सकते हैं?

महात्माजी—भूल से मनुष्य बुरी बात को अच्छी मान लेता है। तुम्हारे इस समय जो आदर्श हैं, उन्हें बिना चोट लगे तुम न भूलोगे!

हॉर—मैं मानता हूँ कि ऐसा हुआ करता है, पर इस समय तो हमारा यही विश्वास है कि हमारे आदर्श झूठे नहीं हैं।

महात्माजी—करेंसी और एक्सचेंज के सम्बन्ध में निर्णय करने से पहले तुमने हमारे विशेषज्ञों को क्यों नहीं बुलाया?

पूँजी कम हो गई। स्थिति ख़राब है, इसलिए अभी बाज़ार सुधरने की आशा नहीं है।

ख़ुफ़ियावाले बराबर महात्माजी के साथ उनकी हिफ़ाज़त के लिए चलते हैं। उनकी गाड़ी के आगे पुलिस की गाड़ी चलती है। जहाँ भीड़ नज़र आई वहाँ इस गाड़ी की घंटी बजी और पुलिस के सिपाहियों ने रास्ता साफ़ कर दिया।

: १८ :

१ अक्टूबर, '३१

लन्दन

आज अल्पसंख्यक-दल-कमेटी की फिर बैठक थी। महात्माजी ने कल मुसलमानों से कह दिया कि "मैं साफ़-साफ़ बता दूंगा कि मौजूदा हालत में समझौता मेरे बस की बात नहीं है। अगर कुछ नहीं होता तो मैं कान्फ्रेंस से हट जाता हूं।" इस पर उन लोगों ने आग्रह किया कि आप समझौते के लिए एक छोटी कमेटी बना दें और उसमें एक बार फिर प्रयत्न कर देखें कि कुछ तय होता है या नहीं। इसलिए फिर एक सप्ताह के लिए कमेटी का कार्य स्थगित किया गया। समझौते की कमेटी बन गई है। मुझे भी उसका मेंबर रखा है।

पूँजी कम हो गई। स्थिति खराब है, इसलिए अभी बाज़ार सुधरने की आशा नहीं है।

खुफ़ियावाले बराबर महात्माजी के साथ उनकी हिफ़ाज़त के लिए चलते हैं। उनकी गाड़ी के आगे पुलिस की गाड़ी चलती है। जहाँ भीड़ नज़र आई वहाँ इस गाड़ी की घंटी बजी और पुलिस के सिपाहियों ने रास्ता साफ़ कर दिया।

: १८ :

१ अक्टूबर, '३१

लन्दन

आज अल्पसंख्यक-दल-कमेटी की फिर बैठक थी। महात्माजी ने कल मुसलमानों से कह दिया कि "मैं साफ़-साफ़ बता दूँगा कि मौजूदा हालत में समझौता मेरे बस की बात नहीं है। अगर कुछ नहीं होता तो मैं कान्फ्रेंस से हट जाता हूँ।" इस पर उन लोगों ने आग्रह किया कि आप समझौते के लिए एक छोटी कमेटी बना दें और उसमें एक बार फिर प्रयत्न कर देखें कि कुछ तय होता है या नहीं। इसलिए फिर एक सप्ताह के लिए कमेटी का कार्य स्थगित किया गया। समझौते की कमेटी बन गई है। मुझे भी उसका मेंबर रखा है।

इन कमेटियों में कुछ होना नहीं है। मैंने महात्माजी से कहा भी कि ऐसी बीसों कमेटियाँ पहले बैठ चुकीं, आपने यह फिर बला क्यों मोल ली? अन्सारी के बिना आप तो कुछ कमोबेश करनेवाले नहीं और अन्य लोगों से तो अनन्तकाल तक भी समझौता नहीं होने का है। महात्माजी कहते हैं, "यह कमेटी तो मुझे नीचा दिखाने के लिए बनाई गई है और यह जानते हुए भी मैंने ही इसका संचालन करना स्वीकार किया

है, किन्तु इसमें भी मेरी कोई हानि नहीं है। अंत में मैं तो अपना निर्णय दे दूँगा, चाहे कोई माने या न माने।" मुझे उनकी यह वात नापसंद है। किन्तु गांधीजी सव कुछ समझ कर ही करते हैं, इसलिए देखें क्या होता है।

अवतक का निचोड़ तो यह है कि न तो हम तिल घटे न चावल वढ़े। जहाँ-के-तहाँ ध्रुव की तरह वैठे हैं। यह भी स्पष्ट है कि अवतक यहाँ के किसी प्रतिष्ठित नेता ने जीभ नहीं जमाई है, तो भी मेरा ऐसा ख़याल है कि अवतक की सारी वातें 'विलैया दंडवत्' हैं। या तो यों कहना चाहिए कि दोनों दल सलामी उतार रहे हैं। असल मुठभेड़ अगले सप्ताह में हो जायेगी। उसके वाद या तो उस पार या इस पार। मुझे तो अवतक यही विश्वास है कि कोई रास्ता निकलेगा। लेकिन यह स्पष्ट है कि महात्माजी को छोड़कर सव यहाँ तेज-हीन-से हो रहे हैं। कुछ तो लन्दन के सामने हक्के-वक्के हो गये, कुछ महात्माजी के सामने दव गये, पर तो भी किसीमें जिसको हम 'झाड़ा-फाड़ा' कहते हैं, वह करने की शक्ति नहीं है। विचार करते-करते लोग वुड्ढे हो गये, किन्तु 'अव भी वह विचार, १०० वर्ष वाद देखो तो वही विचार' यह हाल है।

प्रधान-मंत्री ने आज महात्माजी से कहा कि कल मैंने जो कुछ कहा, उसका आपने कुछ भी वुरा तो नहीं माना! मैंने महात्माजी से कहा कि होर का आप पर अच्छा प्रभाव पड़ा और प्रधान-मंत्री का वुरा, पर अन्त में प्रधान-मंत्री ही आपका साथ देगा। इस पर श्रीनिवास शास्त्री ने कहा कि "दोनों में

कोई साथ न देगा। प्रधान-मंत्री से कुछ भी आशा करना व्यर्थ है। वह पक्का साम्राज्यवादी है और मौक़ा पड़ने पर अपने सिद्धान्तों को ताक़ पर रख देता है।"

: १९ :

४ अक्टूबर, '३१

लंदन

आज बेन्थल से दिन में भोजन के समय देर तक बातें हुईं। उसकी पत्नी भी मौजूद थी। पर हम लोगों की बातचीत अलग हुई।

मैंने आरम्भ में ही कहा कि मुझे तुम लोग गरम मिज़ाज का बताते फिरते हो और मेरा विश्वास भी कम करते हो। ऐसी अवस्था में मुझे डर है कि हम दोनों की स्पष्ट बातें न हो सकें। पर अगर ऐसा हुआ तो इससे कुछ भी लाभ न होगा।

बेन्थल ने कहा कि विश्वास रक्खो, मैं साफ़-साफ़ बातें करूँगा। फिर हम दोनों की जो बातचीत हुई उसका सारांश इस प्रकार है :

मैं—हमलोगों का ख़याल है कि कान्फ़्रेंस के कारण समय की बरबादी हो रही है। सरकार ने इसे अपने ख़ुशामदी टट्टुओं से प्रायः भर दिया है और इसके द्वारा कुछ भी काम बनना असंभव है। अगर सचमुच समझौता करना चाहते हो तो पहले मूल बातें निश्चित हो जानी चाहिएं—यह मालूम हो जाना चाहिए कि तुम कहाँतक आगे बढ़ने को तैयार हो। मूल निश्चित हो जाने पर शाखा और पल्लव से सम्बन्ध रखने-

वाली वातें एक विचार-समिति के हवाले कर दी जायेंगी।

वेन्थल—एक दल यहाँ अवश्य इस वात के पक्ष में था कि समय नष्ट करके सवको यों ही वापस कर दिया जाये। पर दूसरे दल का—और यह दल प्रभावशाली है—विचार हुआ कि नहीं, समझौता अवश्य हो जाना चाहिए। मैं जो कुछ कहता हूँ उसकी प्रामाणिकता का तुम पूरा विश्वास कर सकते हो। ऐसे काम में अधीर होना ठीक नहीं। सालभर भी इस काम के लिए थोड़ा ही समझना चाहिए। मैं नाम नहीं वता सकता, पर मैं जिस दल की वात करता हूँ, उसकी पूरी राय है कि कुछ तय अवश्य हो जाना चाहिए।

मैं—साल भी लगे तो परवा नहीं, वशर्ते कि सचाई हो—समझौते की पूरी ख्वाहिश हो।

वेन्थल—मैं यह मानता हूँ, पर जहाँ तुम्हारी ओर से क़ानून द्वारा हमें वहिष्कृत करने की वातें होती हैं, वहाँ समझौता कैसे हो?

मैं—इस सम्वन्ध में तो गांधीजी आश्वासन दे ही चुके हैं, मैंने भी जातिगत वहिष्कार के विरुद्ध मत प्रकट किया है।

वेन्थल—पर वैङ्किङ्ग कमेटी की जो रिपोर्ट निकली है, उसे देखो। उसमें तो भारतवासियों की ओर से जो प्रस्ताव किये गये हैं, उनका उद्देश यही है कि अंग्रेजों को इस क्षेत्र से निकाल वाहर किया जाये।

मैं—असल में परिस्थिति और वातावरण को देखना चाहिए। मौजूदा हालत में हमें यह ज़रूर कहना पड़ता है, पर हमें पूरा अधिकार मिल जाये तो हमारा रुख वदल जायेगा।

बेन्थल—गांधीजी इस बात पर जोर देते हैं कि आज तक जो कुछ हो चुका है, उसकी हम पूरी जाँच करेंगे। मसलन वह इस बात पर तुले हुए हैं कि जितने पट्टे सरकार-द्वारा दिये जा चुके हैं उनकी जाँच हो और यह देखा जाये कि कहाँ-कहाँ पक्षपात हुआ है। पर यह कैसे पार पड़ेगा? न जाने कितने हज़ार पट्टे होंगे। किस-किस की जाँच होगी?

मैं—जाँच उन्हींकी होगी जिनके बारे में लोगों को शिकायत होगी। पर इस विषय में तुम गांधीजी का समाधान करा दो। वास्तव में मेरी उपयोगिता तो तब होगी, जब तुम दोनों की बातें हो लेंगी और यह निश्चित हो जायेगा कि समझौते की संभावना है। तुम अपनी रक्षा की बात करते हो, पर भारतवासियों की रक्षा कैसे हो? सिन्धिया कम्पनी मौत की राह देख रही है, उसकी रक्षा का क्या उपाय है? किसी भी तरह हम इसे बचाने का प्रयत्न करते हैं तो तुम्हारी ओर से यह शिकायत होती है कि हम तुम्हें मारते हैं।

बेन्थल—तुम इन्चकेप की सम्पत्ति ले लो और अपने उद्योग-धंधे की रक्षा करो। सरकार खास क़ानून बनाकर ऐसी सम्पत्ति अपना ले तो हमें कोई आपत्ति न होगी। रक्षा करने के और भी उपाय हैं। इस देश में विदेशी रंग के बहिष्कार के लिए खास ऐक्ट बना हुआ है। उसमें लैसन्स लेने का ऐसा विधान है कि विदेशी रंग के व्यापार के लिए वह मिल ही नहीं सकता। तुम भी कुछ ऐसे ही नियम बनाकर अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा कर सकते हो।

मैं—हमें नाम से नहीं, काम से मतलब है। कोई भी अच्छा रास्ता बताओ, हम उसे मान लेंगे। यह ज़रूर है कि हमारे यहाँ एक दल क़ानून-बहिष्कार का पक्षपाती है, पर हम उसे मना लेंगे।

वेन्थल—समझौते की पहली सीढ़ी है हमारे व्यापार-सम्बन्धी अधिकारों का सुरक्षित हो जाना।

मैं—अंग्रेज़ व्यापारियों के प्रतिनिधि तुम हो, काँग्रेस के प्रतिनिधि गांधीजी हैं। तुम दोनों एकत्र होकर बातें कर लो। अगर समझौता हो जाये तो तुम उनका पूरा साथ दो। न हो सके, कान्फ्रेंस निष्फल हो जाये, तो हमलोग अपने-अपने घर की राह लें।

वेन्थल—मेरी भी यही राय है।

मैं—अब जितने विषय हैं उन्हें एक-एक करके लो और प्रत्येक के सम्बन्ध में अपनी राय जाहिर करो।

वेन्थल—फ़ौज के बारे में मेरी कोई वकत नहीं, इसलिए मैं कुछ कहना नहीं चाहता। पर, हाँ, हमारी ओर कोई टस-से-मस होने को तैयार नहीं है।

मैं—मैं तुम्हें यह कह देना चाहता हूँ कि गांधीजी भी इस विषय में टस-से-मस होने को तैयार नहीं हैं। पर तुम उनकी बात तो सुन लो कि वह क्या चाहते हैं, अधिकार का वह क्या अर्थ करते हैं।

वेन्थल—मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि फ़ौज के लिए हठ करना ठीक न होगा। आखिर किसी राष्ट्र के जीवन में दस-बीस बरस कितने दिन होते हैं!

मैं—बेशक, मगर यह तो पक्का हो जाये कि इतने दिनों बाद हमारा पूरा अधिकार हो चलेगा।

वेन्थल—इसकी बातें होंगी। अब मैं क़र्ज़ की बात लेता हूँ। मेरी सलाह है कि भूलकर भी तुम क़र्ज़ चुकाने से इन्कार मत करना।

मैं—हम इन्कार तो करते नहीं। हमारा तो यह कहना है कि न्याय से हम जिसके देनदार साबित न हों, वह हम न दें।

वेन्थल—जो हो चुका, हो चुका। जो क़र्ज़ है, उसे तुम क़बूल कर लो। हाँ, यह हो सकता है कि झगड़ा मिटाने के लिए इंग्लैण्ड तुम्हें एक सालाना रक़म दे दिया करे।

मैं—मतलब रुपये से है, चाहे वह किसी भी रूप में मिले। इन दोनों बातों पर हमलोग बहुत कुछ सहमत जान पड़ते हैं। अब आर्थिक संरक्षणों की बात लो। हमारी स्वतंत्रता को नियंत्रित करने के दो उद्देश्य हो सकते हैं—या तो हमारा भला चाहते हो या अपने हित या स्वार्थ को सुरक्षित रखना चाहते हो। अगर तुम यह साबित कर दो कि तुम जैसा नियंत्रण चाहते हो, वह हमारी भलाई के लिए है तो हम तुम्हारी बात मान लेंगे। पर तुम्हीं विचार कर देखो कि वैसी परिस्थिति में हम अपनी क्या उन्नति कर सकेंगे, अपने ग़रीब भाइयों को क्या आराम पहुँचा सकेंगे? भारत-सरकार का सालाना बजट प्रायः १३० करोड़ रुपये का होता है। रेलवे, फ़ौज, क़र्ज़ और पेंशन इत्यादि में प्रायः ११० लग जाते हैं और इनपर तुम अपना अधिकार चाहते हो! फिर हमें जो स्वतंत्रता मिली, वह कुल २० करोड़
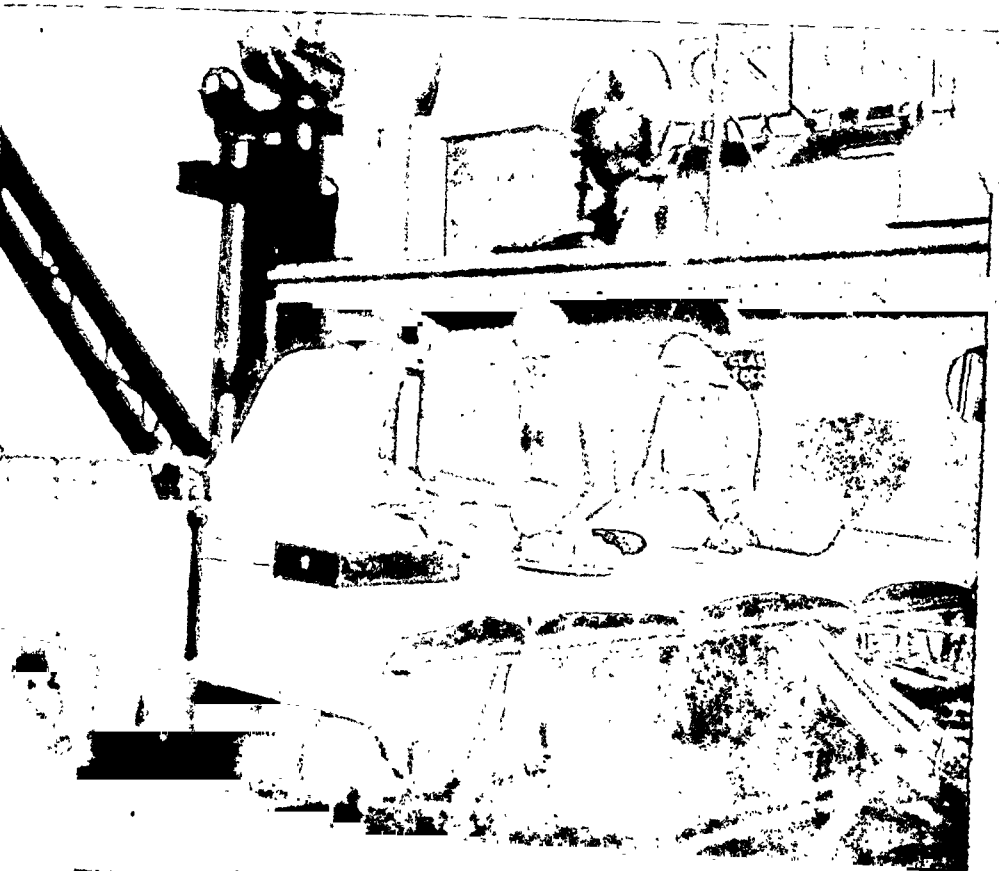
जहाज पर गांधीजी श्री महादेव देसाई और श्रीमती मीरां बेन के साथ

के लिए। अगर हमने कोई भी टैक्स घटाना चाहा तो वाइसराय झट कूद पड़ा और हमें रोक दिया। ऐसे स्वराज से क्या लाभ? तुम हिसाब करके देख लो कि क्या हमें देते हो और क्या अपने हाथ में रखते हो?

वेन्थल—फ़ौज का खर्च वेशक वहुत ज़्यादा है। मैं उसके घटाने के पक्ष में हूँ।

मैं—शायद तुम यह मंजूर करोगे कि इस फ़ौज के खर्च का कुछ हिस्सा इंग्लैण्ड से मिलना चाहिए।

वेन्थल—मैं मंजूर करता हूँ।

रेलवे-विभाग के सम्वन्ध में उसने कहा कि उसे व्यापार की तरह चलाया जाये; भारत-सरकार को केवल अन्तिम निर्णय करने का अधिकार रहे। रिज़र्व वैंक के वारे में पूछा कि तुम क्या इसे पसन्द करते हो कि वह राजनैतिक दलवन्दी के प्रभाव में रहे?

मैंने कहा कि "मैं सरकार के लिए पूरी स्वतंत्रता चाहता हूँ। जिस तरह यहाँ की सरकार ने गोल्ड स्टैण्डर्ड जव चाहा छोड़ दिया उसी तरह हमारी सरकार को भी यह अधिकार होना चाहिए कि देश के लिए, जो उचित समझे, करे।"

वेन्थल—ठीक है, पर वाइसराय की मंजूरी से करे।

मैं—मेरी राय है कि वाइसराय की मंजूरी का यह अर्थ न हो कि वह वात-वात में दखल दिया करे। पर इस विषय में भी गांधीजी ही प्रामाणिक रूप से कुछ कह सकते हैं।

वेन्थल—इस मामले में तीन भागीदार हैं—देशी नरेश, सरकार और ब्रिटिश भारत। अगर तीनों के प्रतिनिधित्व

की व्यवस्था हो जाये, तो सारा प्रश्न हल हो चले।

मैं—सरकार के प्रतिनिधित्व का क्या अर्थ ?

बेन्थल—जबतक पूरे अधिकार नहीं मिल जाते तब-तक कुछ ऐसी व्यवस्था आवश्यक है।

मैं—पर कौन कह सकता है कि जो व्यवस्था थोड़े समय के लिए की जायेगी वह स्थायी न हो चलेगी ? खैर, इन बातों पर आगे विचार होने का क्या रास्ता है ?

बेन्थल—फ़ुरसत हो तो मंगलवार को गांधीजी, तुम, मैं, कार और कैंटो मिलकर पहले व्यापार-सम्बन्धी अधिकारों के विषय में कुछ निर्णय कर लें। उसके बाद आर्थिक संरक्षणों के विषय में ब्लैकेट, स्ट्राकोश इत्यादि मिलकर बातें कर लेंगे।

: २० :

६ अक्टूबर, '३१

लन्दन

आज शाम को इंडिया आफ़िस में सर हेनरी स्ट्राकोश के साथ "दंगल" हुआ। सभापति का आसन पहले तो भारत-सचिव सर सैमुयल होर ने ग्रहण किया, पर मंत्रिमण्डल की मीटिंग थी, इसलिए सर रेजिनल्ड मैंट को अपना पद देकर वह कुछ ही मिनिट बाद चलता बना। और बहुत-से लोग उपस्थित थे—गांधीजी, सर पुरुषोत्तमदास, मि० जिन्ना, सर मानिकजी, सर फ़ीरोजशाह सेठना, के. टी. शाह, प्रो० जोशी, रंगास्वामी अय्यङ्गार, इत्यादि, इत्यादि। गांधीजी प्रायः ७ बजे कार्य्यवश उठकर चले गये। ५।। बजे से कार्रवाई आरम्भ हुई। सरकार की ओर से सर हेनरी स्ट्राकोश ने वक्ता का काम किया और अपनी ओर से मैंने। ब्लैकेट भी मौजूद था, पर कुछ बोला नहीं। स्ट्राकोश ने पहले तो संसार की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया, फिर भारतवर्ष की बातें करने लगा। उसकी सबसे बड़ी दलील यही थी कि अगर एक्सचेंज १-६ स्टर्लिंग पर न बाँध दिया गया होता तो न जाने लुढ़कते-लुढ़कते कहाँ जाकर दम लेता और न जाने सरकार को कहाँतक नोट छपाकर अपना काम चलाना

पड़ता। मैंने जब पूछा कि आखिर ठहराने के लिए तुम्हारे पास साधन क्या हैं, तब उससे कोई उत्तर न बन पड़ा। उसने अधिकांश समय मेरी उन दलीलों का जवाब देने में लगाया जो मैंने आर्थिक सुधार (मॉनीटरी रिफार्म) नाम की पुस्तिका में पेश की हैं। मैंने कहा कि मैं बात-बात पर बहस करने को तैयार हूँ, पर मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि उस पुस्तिका में मैंने जो मत प्रकट किया है, वह मेरा अपना है, भारतीय व्यापारी-वर्ग का नहीं। यहाँ जो लोग आये हैं वे भारत-सरकार की नीति के विषय में कुछ कहने-सुनने आये हैं, इसलिए उस विषय को छेड़कर मेरी पुस्तिका की समालोचना में समय लगाना इनके साथ अन्याय करना है। फिर भी स्ट्राकोश ने अपना विचार न बदला। खैर, अच्छी बहस हुई। मैंने लिखा था कि एक्सचेंज की दर उठाने का वास्तविक उद्देश अंग्रेज़ सिविलियन और व्यवसायी को लाभ पहुँचाना था। यह बात इन लोगों को खूब चुभी और स्ट्राकोश कहने लगा कि इसे किस तरह प्रमाणित कर सकते हो? सर पुरुषोत्तमदास ने कहा कि यह क़िस्सा तो लम्बा-चौड़ा है, और इसे सुनने-सुनाने के लिए समय चाहिए। खाने-पीने का वक़्त हो रहा था, लोगों को अपने-अपने काम से जाना था, इसलिए चर्चा स्थगित की गई। मुझे ऐसा जान पड़ा कि स्ट्राकोश अपने विषय का पूरा पंडित है, पर बेईमान नहीं है, इसलिए संभव है, या तो फिर इसकी चर्चा ही न हो या ब्लैकेट जैसे आदमी को सरकारी पक्ष के समर्थन का काम सौंपा जाये। स्ट्राकोश अच्छी तरह जानता है कि सरकार की ओर से पेश करने लायक़ कोई

ज़ोरदार दलील नहीं है। वह करे तो क्या? बोला कि तुमने बारबार कहा है कि हमारा सोना उड़ा दिया। वास्तव में सरकार ने उड़ाया नहीं, हिन्दुस्तान की जो ज़िम्मेदारी थी उसे पूरा किया। मैंने पूछा, इंग्लैण्ड की भी तो ज़िम्मेदारी थी—यहाँ क्या किया? उसने कहा—मगर इंग्लैण्ड हिन्दुस्तान जैसा दूसरों का देनदार नहीं है। मैंने उत्तर दिया—मैं इसे मानता हूँ, पर दो बातें हैं। इंग्लैण्ड वैसे देनदार न हो, पर यहाँ एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट ज़्यादा है। हमारा देश देनदार है, पर वह इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज़्यादा करता है। यह तुम्हें न भूलना चाहिए। साथ ही, यह भी ध्यान में रखने की बात है कि हम अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति कर, अपनी उत्पादन-शक्ति बढ़ाकर ही अपना देना चुका सकते हैं। फिर हमारी नीति कौन-सी होनी चाहिए—उद्योग-धन्धों को बढ़ानेवाली या उनका सत्यानाश करनेवाली? स्ट्राकोश फिर निरुत्तर रह गया।

: २१ :

७ अक्टूबर, '३१

लन्दन

आर० टी० सी० में अवतक क्या हुआ है, ऐसा पूछा जाये तो यही कहना होगा कि कुछ भी नहीं। अल्पसंख्यक जातियों का झगड़ा अभी निवटना बाक़ी है। स्वराज-विधान के सम्वन्ध में एक चावल भर भी प्रगति अव तक नहीं हो पाई है, तो भी यह कहा जा सकता है कि धीरे-धीरे हम आगे वढ़ रहे हैं। गांधीजी की मैत्री फैलती जा रही है, लोगों से वातें होती रहती हैं और हमारे कार्य को कुछ-न-कुछ नया स्वरूप रोज़ मिलता रहता है। अल्पसंख्यक जातियों के समझौते की कहानी दूसरे अध्याय में मिलेगी। आज गांधीजी, सर पुरुषोत्तमदास, वेन्थल, कार और मैं, पाँचों वैठे और मशविरा शुरू कर दिया। संख्या के हिसाव से शकुन ठीक हुआ, क्योंकि पंच पाँच ही होते हैं, हम भी पाँच थे। तीन वातें हम लोगों ने आपस में तय कीं—

(१)—स्वराज में अंग्रेज़ों के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव न हो।

(२)—जातीय भेद-भाव का खयाल किये विना स्वराज-सरकार भारतीय उद्योग-धंधों को

संरक्षण दे। ऐसे संरक्षण में ध्येय अमुक दूकान या व्यवसाय को संरक्षित करना ही होगा, न कि काले-गोरे का भेद करना।

(३)—आज की सरकार से किसी व्यवसायी ने वेईमानी से कोई स्वत्व प्राप्त कर लिये होंगे तो उनकी जाँच-पड़ताल का हक़ स्वराज-सरकार को होगा।

वार्तालाप के अन्त में तय हुआ है कि यह सिलसिला आगे चलेगा और इन्हीं लोगों द्वारा व्लैकेट, स्ट्राकोश इत्यादि से आर्थिक विधान के सम्बन्ध में समझौता होगा जिसे, आशा की जाती है, यहाँ की सरकार भी स्वीकार कर लेगी।

: २२ :

८ अक्टूबर, '३१

लन्दन

आज सुबह गांधीजी सैंकी और हर्बर्ट सैमुयल से मिले। बातों का सारांश इतना ही है कि अभी उन्होंने लम्बी आशा नहीं दी है। सैंकी ने कहा कि तुम्हें ख़ाली हाथ न जाने देंगे, किन्तु सैंकी मिठबोला भी है। गांधीजी कहने लगे कि होर यदि ऐसी आशा दिलाये तो उसकी ज़्यादा क़ीमत की जानी चाहिए। किन्तु उसने ऐसी आशा नहीं दिलाई है।

मैंने गांधीजी से आज साफ़ ही पूछा कि आपको क्या आशा है ? कहने लगे कि ख़ाली हाथ जाना होगा। मैंने कहा, पर सम्भव है कि इतना मिल जाये, जिससे आपको लड़ना न पड़े। कहने लगे, हाँ—ऐसा सम्भव है और उसीका प्रयत्न कर रहा हूँ। होर ने कहा है कि हमें तो कई दिनों तक आपसे बातों का सिलसिला रखना होगा। यह स्पष्ट है कि अब आर० टी० सी० का महत्व नहीं है। जो काम होना है वह भीतर-ही-भीतर होगा। इर्विन ने लिख दिया है कि मुझसे मिले बिना हर्गिज़ न तोड़ना। इन्होंने भी लिख दिया है, 'तथास्तु'।

यहाँ के कोई फ़ौजी अफ़सर ग़दर के ज़माने में लूटपाट

करके हिन्दुस्तान से कुछ जवाहरात ले आये थे। ज़्यादा क़ीमती नहीं, पर कुछ मूल्यवान तो था ही। पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह चीज़ उनके वंश में चली आती थी। अब गांधीजी यहाँ आये तो उनकी ख्याति सुनकर उस वंश के लोगों को लगा कि गांधीजी के देश का हराम का माल रखने से तो हमारा नाश हो सकता है। आज उनके कुटुम्ब की स्त्रियाँ आईं और वह हार जो पुखराज का था गांधीजी के चरणों में रखकर कहने लगीं—हमारे पुरखे लूटकर भारत से यह लाये थे, बहुत दिन रक्खा, अब आपके तप का बखान सुना तो रखने की हिम्मत नहीं होती। गांधीजी ने हार को स्वीकार कर लिया। तप का ही यह चमत्कार है, वर्ना भेड़िये के मुँह में गया ग्रास वापस नहीं आता।

: २३ :

९ अक्टूबर, '३१

लन्दन

अल्पसंख्यक-दल-कमेटी की कहानी सारी-की-सारी दुःखद है। एक सप्ताह तक यह नाटक चला और अन्त में जहाँ-के-तहाँ ! वही सीटों का झगड़ा, वही अविश्वास ! अन्त में छठे दिन किसी ने प्रस्ताव किया कि कुछ पंच हों, उन्हें मामला सौंप दिया जाये। गांधीजी ने कहा, मुंजे ! तुम्हारी क्या राय है ? उत्तर मिला, मुसलमानों से पूछिए। मुसलमानों से पूछा तो कहने लगे कि सलाह करके बतायेंगे। रात को १० बजे फिर सभा बैठी। मुसलमानों ने कहा कि हमें मंजूर है, तो डा० मुंजे ने भी कहा कि मंजूर है—किन्तु सवाल उठा कि पंच कौन हो ? डा० मुंजे बोले कि पंच कोई बाहर का आदमी हो। मुसलमानों ने कहा, नहीं—मेंबरों में से कोई हो। इस सारे नाटक को देखकर मुझे तो दुःख होता था। दोनों दलों में परस्पर के अविश्वास के अलावा और भी बात आ गई है। नतीजा यह हुआ है कि गांधीजी का बोझ बढ़ता जाता है। दिन-रात काम करते हैं, ३ घंटे से ज़्यादा सोने को नहीं मिलता। इनके बल पर ही यहाँ थोड़ी पूछ है, जिस पर तुर्रा यह कि हर तरह से हमारे ही लोग इन्हें

तंग करते रहते हैं। मुसलमान करें तो हम ला-इलाज हैं, किन्तु हिन्दू भी करते हैं। जिनसे आशा थी उन्होंने भी सहायता नहीं की। मैंने गांधीजी से स्पष्ट कहा कि आपको करना है सो करें। कहने लगे—"सो तो करूँगा ही, किन्तु मुसलमान भी तो कहाँ मेरा साथ देनेवाले हैं! और साथ देने का जब-तक वादा न करें तबतक मैं आत्म-समर्पण करके क्या करूँ?" आज आखिर भरी सभा में गांधीजी ने कह दिया कि मैं तो हार गया, किन्तु हार का यह भी कारण है कि यह सम्मेलन असल पंचों का नहीं है, इसमें नक़ली पंच हैं। बस इतना कहा, मानो मधुमक्खियों के छत्ते को छेड़ दिया। शफ़ी आपे से बाहर। अम्बेडकर ने तो ज़हर ही उगल डाला। कहने लगा, "महात्मा को तो झूठा दावा करने की आदत है। छः करोड़ अछूत तो मुझे ही मानते हैं, गांधीजी को तो कोई पूछता भी नहीं।" प्रधान-मंत्री ने भी गांधीजी को खोटी-खरी सुनाई। मेरे बदन में तो आग-सी लग गई। गांधीजी कहने लगे, शान्त हो, हमारा रास्ता ठीक है, दूसरे क्या कहते हैं, इसकी क्या चिन्ता है।

: २४ :

१४ अक्टूबर, '३१

लन्दन

इस सप्ताह का हाल तो अत्यन्त निराशा-जनक है। गत आर० टी० सी० में कुछ तो आशा थी, पर इस वार तो सबके मुँह फीके हैं। माया-जाल तो अंग्रेजों ने ही बिछाया था, किन्तु उसमें हमारे अच्छे-अच्छे लड़वैये फँस गये हैं। गांधीजी छटपटाते हैं, किन्तु कोई असर नहीं हो रहा है। शायद गांधीजी कुछ उग्रता करें तो कुछ नया सिलसिला निकल आये। अभी गांधीजी भी **'सब धान बाईस पसेरी'** हो गये हैं। वही आदर है, वही सत्कार है। किन्तु **"देबा लेबा नै तो भाया राम जी को नाम"**। स्वराज का जो नक़शा खींचा गया था, वह भान-मती का पिटारा था। राजा शामिल हों, अंग्रेज़ भीतर हों, हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, मज़दूर, व्यापारी, ऐंग्लो-इंडियन, अछूत सबको अलग-अलग हक़ मिलें, सबकी सम्मति हो, तब विधान बने। जाति-पाँति की कई कतर-व्योंतें की गईं और अब हमसे कहते हैं, पहले आपस में समझौता करो। दुनिया में जो कहीं न हुआ, उसकी हमसे आशा की जाती है!

क्या इंग्लिस्तान में ऐक्य है? कुछ भी हो, हमारे लिए

तो हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य ज़रूरी है। इस समय सारा-का-सारा झगड़ा पंजाब का है। जब कभी कोई समझौते की आशा होती है, तब सरकारी दूत दौड़ने लगते हैं। हिन्दुस्तान से ख़ास अंग्रेज़ आके बैठे हैं, जो हिन्दू को समझाते हैं 'तुम लुट रहे हो'; मुसलमान को समझाते हैं 'तुम मरे जा रहे हो' और सिक्ख को अलग डराते हैं। मुसलमान कहते हैं, पंजाब में हमारा बहुमत है, वह हमें मिले। हिन्दू कहते हैं, क़ानूनन बहुमत का सिद्धान्त अन्यायमूलक है, ऐसे तुम्हारा बहुमत हो तो हम ख़ुशी से स्वीकार करें। तब एक नई स्कीम निकली। पंजाब में से अम्बाला, जिसमें अधिक हिन्दू हैं, निकाल लिया जाये। इसका नतीजा यह होता है कि पंजाब में मुस्लिम-बहुमत ६३ फ़ीसदी बन जाता है और फिर मुसलमान पृथक् निर्वाचन या सुरक्षित सीटों की ज़िद्द नहीं करते। सिद्धान्त-रूप से हिन्दू विरोध नहीं कर सकते, किन्तु जहाँ इस स्कीम की चर्चा चली, कुछ नेता कहने लगे, "राम-राम! यह तो और भी बुरा!!" पंचायत की बात चली। गांधीजी ने ख़ूब ज़ोर लगाया कि "पंडितजी, आप पंचायत मान लें। यद्यपि मुसलमान राज़ी नहीं हैं तो भी लोगों पर जो बुरा असर पड़ा है, कम-से-कम वह तो रफ़ा हो जायेगा।" पर पंडितजी पंचायत के लिए तैयार नहीं। यहाँ लोगों पर बुरा असर पड़ा है। उन्हें कहने का मौक़ा मिल गया है कि जब तुम्हारा मेल ही नहीं तब हम क्या करें? स्वराज की लुटिया तो डूब चुकी, ऐसा अभी मालूम होता है। लोग जहाज़ में स्थान ख़रीदने लग गये हैं। जहाँ जीवन-मरण का प्रश्न है

वहाँ ऐसी लड़ाई अत्यन्त घृणास्पद मालूम होती है। पंडितजी का चेहरा भी उतर गया है और उनके क्लेश का कोई ठिकाना नहीं। इस सप्ताह पंडितजी, गांधीजी, जिन्ना और सप्रू के बीच मैंने काफ़ी दौड़-धूप की और अब थक गया हूँ। मुसलमानों को न हमारा विश्वास है, न सीधी बातें हैं, न तय होने पर ही पूरा साथ देने को तैयार हैं। किन्तु उनकी चर्चा फ़िज़ूल है। गांधीजी 'आत्म-समर्पण' कर देना चाहते हैं, बशर्ते कि मुसलमान उनका राष्ट्रीय माँगों में साथ दें। पर राष्ट्रीय माँगों में साथ देने की उनकी हिम्मत कहाँ !

धीरे-धीरे अब राजा भी खिसकने लगे हैं। भानमती के पिटारे में कई साँप बन्द थे। वे निकल-निकल भागते हैं। महाराजा बीकानेर कहते हैं, हम साथ हैं, किन्तु—बस 'किन्तु' पर अड़ जाते हैं। अछूतों और दूसरे लोगों को तो अभी चिल्लाने का अवसर ही नहीं मिला है। हमारी इस सप्ताह में खूब हँसी हुई है। ऐसी निराशा के भँवर में गांधीजी प्रसन्नमुख हैं। कहने लगे, 'शर्मिन्दा बनके नहीं जायेंगे, चिन्ता मत करो।' गांधीजी भीतर-ही-भीतर मिलते रहते हैं और एक तरह से मैत्री बढ़ रही है। इस मैत्री का शीघ्र कोई फल होनेवाला नहीं है। जवाहरलालजी के बहादुरी के खत आते रहते हैं।

कई चित्रकार, कई शिल्पकार बैठे गांधीजी के चित्र और मूर्तियाँ बना रहे हैं। गांधीजी बच्चों से खेलते रहते हैं। वही रंग, वही ढंग। न कभी यहाँ से उन्हें आशा थी, न अब निराशा है। जिन्हें आशा थी, उनके ही चेहरे सूखे हैं।

वेंथल से आज रात को फिर बातें चलेंगी। सिलसिला जारी है। इंडिया आफ़िस में एक्सचेंज का दंगल फिर परसों होगा।

: २५ :

१६ अक्टूबर, '३१

लन्दन

हिन्दू-मुसलमान-समस्या का ताज़ा हाल अब यह है कि मि० जयकर और डा० मुंजे दोनों ही कुछ ठंडे हो रहे हैं। सिक्ख नहीं मानते, पंडितजी कुछ दृढ़तापूर्वक नहीं कहते। कार्बेट की स्कीम है कि अम्बाला डिवीज़न पंजाब से निकाल लिया जाये, जिसका परिणाम होता है कि पंजाब में हिन्दू प्रति सैकड़े प्रायः २२, सिक्ख १४, मुसलमान ६३ रह जाते हैं। मुसलमान शायद इस स्कीम को संयुक्त चुनाव के साथ और बिना अलग "कुर्सी" रखवाये मान लें। पर झगड़ा वैसे-का-वैसा ही है। महात्माजी को यह स्कीम पसन्द आई है और शायद इसीका सिलसिला अब चलेगा। आज रात को और दोपहर को भी मुसलमानों से महात्माजी बातें करेंगे।

नरेशों का हाल भी बुरा है। संशय से भरे पड़े हैं। उनसे भी अलग बातें होंगी।

होर से फिर महात्माजी कल मिले। जितना ज़्यादा मिलते हैं, उतना ही उससे प्रेम बढ़ता जा रहा है, हालाँकि दोनों उत्तर-दक्षिण हैं। परसों होर ने भरी सभा में कह दिया कि फ़ौज हम हर्गिज़ नहीं देंगे। उसपर महात्माजी ने कहा,

जहाज पर गांधीजी : नवाब भोपाल के साथ

शाबाश ! स्पष्ट-वक्ता हो तो ऐसा हो। कल होर ने पूछा, मैंने आपको नाराज़ तो नहीं किया ? महात्माजी ने कहा, "नाराज़ नहीं, तुमने मुझे राज़ी किया; क्योंकि मुझे पता लग गया कि तुम ईमानदार हो, लल्लो-चप्पो नहीं करते। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे अब यहाँ क्यों बैठा रक्खा है ? मुझे भेज दो।" होर ने कहा है कि "इतनी जल्दी न करें, मैं अगले सप्ताह में स्पष्ट कर दूँगा कि हम कहाँतक जाने को तैयार हैं। आपने तो कोई बात छिपा नहीं रक्खी। मैं भी कोई बात छिपाके नहीं रखूँगा।"

महात्माजी कहते थे कि यह आदमी तो सोना है और इसीसे मेरा काम बनेगा। सप्रू वग़ैरह तो सिर कूटते हैं कि यह राक्षस कहाँ से आगया ! उनकी दृष्टि में बेन अच्छा था, इनके लिए होर अच्छा है। मुझे मालूम होता है, इतनी जल्दी महात्माजी को नहीं भेजेंगे, किन्तु महात्माजी जो चाहते हैं सो नहीं मिलेगा। मेरा तो अभी भी वही खयाल है कि दस आने मिलेंगे, छः आने के लिए युद्ध होगा।

: २६ :

२२ अक्टूबर, '३१

लन्दन

आर० टी० सी० के कार्य में तो कोई उन्नति नहीं हुई है। दिन-दिन स्पष्ट होता जाता है कि कुछ होने का नहीं। हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य बना हुआ है और इसको यहाँ काफ़ी तूल दे दिया गया है। प्रायः यही कहा जाता है कि जब तुम आपस में ही समझौता नहीं कर सकते, तो हम क्या करें। महात्माजी को कितने ही लोग उलाहना देते हैं कि आप समझौता क्यों न कर लें, किन्तु महात्माजी न तो मुसलमानों की नीयत साफ़ देखते हैं, न हिन्दू-सभा का उत्साह पाते हैं। इसलिए कुछ अवहेलना-सी कर रहे हैं। मुसलमान इनकी राष्ट्रीय माँगों को स्वीकार कर लें और अन्य छोटी-छोटी दलबन्दियों का साथ न दें तो समझौता कर लें—या तो हिन्दू-सभावाले कारबेट की या अन्य किसी स्वीकार करने लायक़ स्कीम का समर्थन करें तो समझौता हो।

बेन्थल से भी कोई नई बात नहीं हुई। जो पहले हो चुकी, उसीका पिष्टपेषण जारी है। वह भी समझता है कि हम कमज़ोर हैं, इसलिए प्रगति धीमी है।

होर से महात्माजी की फिर बातें हुईं, किन्तु अबतक

कोई नतीजा नहीं निकला। होर ने वादा किया है कि अगले हफ़्ते स्पष्ट बतायेगा कि सरकार कहाँतक जा सकती है ? महात्माजी कुछ अधीर और उतावले-से होने लगे हैं, क्योंकि उनको समय की बरबादी अखरती है। इर्विन ने कहा था कि कोई भी महत्वपूर्ण क़दम रखने से पहले पूछ लेना। कल इर्विन से मिलकर महात्माजी ने कह दिया कि अब मैं यहाँ से भागनेवाला हूँ और एक-दो दिन में ही गोली चला दूँगा। इर्विन ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता। अभी तो पाव में 'पूणी' भी नहीं कती। इसके माने यह भी हो सकते हैं कि कुछ आशा है। चुनाव की धूम के मारे यहाँ लोग व्यस्त हैं। इनकी क्या स्थिति रहेगी, सो भी इन्हें पता नहीं। इसलिए २७ को अपना तलपट बाँधकर बातें करेंगे। इस समय तो चाल यह है कि कान्फ्रेंस को तो बर्ख़ास्त करें और एक नया कमीशन हिन्दुस्तान भेज दें। अकबर ने कहा था कि **"खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुक़ाबिल हो तब अख़बार निकालो।"** अंग्रेज़ों का यह हाल है कि **'गर सामान बग़लें झांकने का है तो कमीशन बैठा दो।'** बस यही चाल है, मगर महात्माजी माननेवाले नहीं हैं। होर समझाने की कोशिश करता है, पर महात्माजी सिर हिलाते हैं।

मेरा ऐसा खयाल है कि यह नहीं मानेंगे तो वे कुछ आगे बढ़ेंगे, पर अधिक आशा नहीं है। महात्माजी स्वयं समझौते के पक्ष में हैं, पर समझौता हो तो किससे ? कल कहते थे कि शायद हिन्दुस्तान पहुँचते-पहुँचते लड़ाई छिड़ जाये। मुझे ऐसा मालूम होता है कि ऐन मौक़े पर कोई घटना घट

जायेगी—हालाँकि अभी तो कोई अच्छी सूरत नज़र नहीं आती।

साथ ही यह जान लेना चाहिए कि यहाँ आने से हमें काफ़ी लाभ हुआ है। महात्माजी की मैत्री तो दूब की तरह फैलती है। शहर के सेठों से कल सुना कि लोगों पर प्रभाव पड़ा है। कहते हैं, गांधी आदमी तो अच्छा है। परसों यहाँ की ठाकुरों और सेठों की सम्मिलित सभा में गांधीजी को बुलाया था। सारी राणखम्माण मौजूद थी। उनका असर अच्छा हुआ। बीज बोया गया है और फिर लड़ाई छिड़ी तो यहाँ के बहुत लोग सहानुभूति जतानेवाले होंगे।

इंडिया आफ़िस का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। गांधीजी ने अपना निर्णय हमारे पक्ष में दे दिया। गांधीजी इस मसले को छोड़ना नहीं चाहते हैं। होर से कहनेवाले हैं कि तुम मुझे नहीं समझा सके। या तो मेरा सन्तोष करो, नहीं तो मैं अपनी राय तुम्हारे खिलाफ़ दूँगा।

चित्र उतारनेवाले, मूर्ति गढ़नेवाले, हस्ताक्षर करानेवाले और वक्तव्य लेनेवाले गांधीजी के पास उसी रफ़्तार से आ रहे हैं। मुलाक़ातों का ताँता भी जारी है। वही धूमधाम है। खाली 'स्वराज' नहीं मिला है।

यहाँ सर्दी ४५ डिगरी तक पहुँची है। अभी तो नवम्बर आना बाक़ी है।

गांधीजी को काम इतना रहता है कि रात को १ बजे सोते हैं—४ बजे उठ जाते हैं। एक दिन कहते थे, पता नहीं किस दिन बीमार पड़ जाऊँ। सोने को समय मिले तो फिर

कोई चिन्ता नहीं। कपड़े उतने ही चलते हैं। कम्बल बढ़ाने को कहा तो कहते हैं, निभ जाती है। पंडितजी को तो जाड़ा ज़्यादा सता रहा है। कपड़े भी यहाँ नये खरीदे हैं। स्वास्थ्य उनका अच्छा नहीं है। मानसिक पीड़ा भी तो है। इस समय उनकी यह स्थिति है कि न गांधीजी को छोड़ना चाहते हैं, न मुंजे और नरेन्द्रनाथ को ही।

: २७ :

२३ अक्टूबर, '३१

लन्दन

कल कुछ विशिष्ट लोगों से वातचीत हुई। कहते थे कि गांधीजी का प्रभाव अच्छा पड़ा है। इनकी सलाह थी कि यहाँ के सेठों को हम समझा सकें तो काम वहुत-कुछ आगे वढ़ सके। ऐसे कुछ सेठों से मिलने का प्रवन्ध कर रहा हूँ। कल सर पुरुषोत्तमदास की लेटन से वातचीत हुई थी। यह 'अर्थ-शास्त्री' (इकनामिस्ट) नामक पत्र का सम्पादक है और 'साइमन कमीशन' का आर्थिक विषयों में सलाहकार वनकर हिन्दुस्तान गया था। उसने कहा कि हिन्दू-मुस्लिम-झगड़े को एक पंचायत के हवाले कर देंगे।

: २८ :

२९ अक्टूबर, '३१

लन्दन

राजनैतिक परिस्थिति ज्यों-की-त्यों है। कोई खास बात नहीं हुई है। पर हम लोग बिल्कुल निराश नहीं हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कन्ज़र्वेटिव पार्टी को चुनाव में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। इस तूफ़ाने-बदतमीज़ी में मज़दूर-दल तो उड़ गया—यह समझना चाहिए। पर सरकार भी सुख की नींद नहीं सो सकती। इस समय पार्लमेण्ट में उसका विरोध नाममात्र को रह गया है। यह उसके लिए उतनी खुशी की बात नहीं है। विरोधी साथ भले ही न दें, पर उनसे उपकार तो होता ही है। समालोचना सीधी राह पर रखने का एक साधन है। सरकार के ज़बर्दस्त विरोधी हों तो वह भयङ्कर भूलों से बहुत-कुछ बच सकती है। इस समय यह बात नहीं है, इससे सरकार को भी चिन्ता होने लगी है। कुछ लोगों का ख़याल है कि यह ज़्यादा समय तक न टिक सकेगी। मेरी अपनी राय दूसरी है। इतना मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि थोड़े ही समय में यह सरकार अपनी लोकप्रियता से हाथ धो बैठेगी। परिस्थिति इतनी ख़राब है कि उसे सुधारना कोई आसान काम नहीं। यह भी याद रखने की बात है कि मज़दूर-

दलवाले हार जाने पर भी एक तिहाई—क़रीब ७,०००,००० —वोट पा चुके हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मज़दूर-दल के साम्यवाद का समर्थन करनेवाले इस मुल्क में ७० लाख आदमी मौजूद हैं। ये लोग चुप रहने के नहीं। रोटी-दालवालों को इसकी गहरी चिन्ता है और मेरा खयाल है कि सरकार हर काम में फूँक-फूँककर क़दम रक्खेगी और जहाँ-तक सम्भव होगा सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करेगी।

हिन्दुस्तान के बारे में उनकी यह नीयत ज़रूर है कि, जहाँ तक हो सके, कम दिया जाये—पर कान्फ़्रेंस टूट जाये, यह उनकी इच्छा नहीं जान पड़ती। फ़ौज को अपनी मुट्ठी में रखना चाहते हैं। आर्थिक मामलों में भी कुछ अधिकार चाहते हैं। गांधीजी यह चेष्टा कर रहे हैं कि हम लोगों की एक राय हो जाये। हिन्दू-मुसलमानों के बीच समझौता कराने के प्रयत्न में वह निरन्तर हैं ही, सप्रू और दूसरों के बीच राजनैतिक एकता कराने की भी कोशिश कर रहे हैं। समझौते के लिए वह काँग्रेस की माँग से कम लेने को भी तैयार हैं—बशर्ते कि काँग्रेस की कार्यकारिणी को यह मंजूर हो। उन्हें सफलता होगी या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। इतनी सफलता उन्हें ज़रूर हुई है कि सब लोग उन्हें समझदार मानने लगे हैं।

बेन्थल से जो बातचीत चली थी, वह बीच में रुक गई थी। शायद उन लोगों ने हमारी कठिनाइयों को देखकर उनसे फ़ायदा उठाना चाहा था। पर उसका सिलसिला फिर शुरू होनेवाला है। कल रात को बेन्थल से मेरी बातचीत हुई।

उसने कहा कि हम लोग सचमुच समझौता कर लेना चाहते हैं। बस इस तरह कुछ-न-कुछ काम रोज हो रहा है। इंडिया आफ़िसवालों को और यहाँ के सेठों को समझाने-बुझाने की कोशिश में हम लोग लगे हुए हैं। काम को आपस में बाँट लिया है। सर पुरुषोत्तमदास के साथ मैं तो आर्थिक विषयों की विवेचना में लगा हुआ हूँ। बेन्थल मुझसे कह रहा था कि जबतक हम लोगों का किश के साथ कुछ समझौता नहीं हो जाता तबतक कुछ होने-जाने का नहीं। किश इंडिया आफ़िस में अर्थ-विभाग का मंत्री है। बेन्थल की बातचीत से तो जान पड़ा कि वह हम लोगों के सहयोग का बड़ा इच्छुक है। बात दरअसल यह है कि इन लोगों को भय है कि बिना हम लोगों के सहयोग के एक्सचेंज और करेन्सी के पाँव मजबूती से जम नहीं सकते। मैंने उससे कहा कि सहयोग देने के लिए मैं हर घड़ी तैयार हूँ। अगले सप्ताह में यहाँ के अर्थशास्त्रियों और इंडिया आफ़िसवालों से बहुत-कुछ बातचीत होने का रंग दीखता है।

अगर कान्फ़्रेंस टूटी नहीं तो नवम्बर के अन्ततक काम रहेगा। बाहर से तो यही जान पड़ता है कि हम लोग आगे नहीं बढ़े हैं, पर भीतर-ही-भीतर कुछ-न-कुछ प्रगति होती जा रही है और काम—धीरे-धीरे ही सही—बनता जा रहा है। अगर कान्फ़्रेंस टूट भी गई तो इतना तो लाभ ज़रूर होगा कि इस बार हम लोग जो मंज़िल तय कर लेंगे, उसे फिर तय करना न पड़ेगा।

गांधीजी आजकल २४ में ३ घंटे से ज़्यादा नहीं सोते।

काम-पर-काम आता ही जाता है। कहते थे कि मैं रोज कम-से-कम ८ घंटे सोना चाहता हूँ, पर तीन से ज़्यादा नहीं मिलता। आर० टी० सी० की कमेटी की मीटिङ्ग में बैठे-बैठे झपकी लेते हैं। सप्ताह के अन्त में लन्दन से कहीं बाहर चले जाते हैं। कभी किसी पादरी के यहाँ, कभी किसी भावुक या ईश्वर-भक्त के यहाँ ठहर जाते हैं। चित्र लेनेवालों और मूर्ति बनानेवालों की संख्या घट चली है, क्योंकि बहुतों की तृप्ति हो चुकी। अभी-तक गांधीजी ने कपड़ा-लत्ता उतना ही रक्खा है। मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ की सर्दी वह कैसे बर्दाश्त कर लेते हैं।

: २९ :

३० अक्टूबर, '३१

लन्दन

कल इंडिया आफ़िस में एक्सचेंज के सम्बन्ध में फिर कान्फ्रेंस बैठी। ब्लैकेट और स्ट्राकोश दोनों ही मौजूद थे। अपनी ओर से सर पुरुषोत्तमदास, गांधीजी, अध्यापक शाह जोशी और मैं था। छोटी सभा होने के कारण इसे विशेष सफलता प्राप्त हुई। लोगों ने दिल खोलकर बातें कीं। स्ट्राकोश ने वही पुराना राग अलापना शुरू किया, पर ब्लैकेट ने बड़ी खूबी से उसे निरुत्तर-सा कर दिया। हम लोगों को इसपर आश्चर्य हुआ और सन्तोष भी। ब्लैकेट ने कहा कि हिन्दुस्तान के लिए इस समय चीज़ों का दाम बढ़ना बहुत हितकर है और मैं चाहता हूँ कि वहाँ दाम फ़ीसदी ४० तक बढ़ चले। हाँ, वह यह न बता सका कि दाम कैसे बढ़ाया जाये। मैंने कहा कि रुपये को फ़िलहाल अपनी राह जाने दो और जब रिज़र्व में काफ़ी सोना इकट्ठा हो जाये, तब १ शिलिङ्ग पर इसे बांध दो। वह इससे सहमत न हो सका। मैंने गांधीजी से कहा कि आप अब इनसे एकान्त में बातें करें। मैंने स्ट्राकोश को भोजन के लिए अगले मंगलवार (३ नवम्बर) को निमंत्रित किया है। ब्लैकेट को भी बुलानेवाला हूँ।

ब्लैकेट 'बैंक ऑव् इंग्लैण्ड' का डाइरेक्टर है और वह चाहता है कि इंग्लैण्ड में दाम फ़ीसदी ३४ बढ़ जाये। कल बेन्थल से फिर बातें हुईं। उसने कहा कि अर्थ-विभाग की देख-रेख के लिए एक कौंसिल बना दी जाये। हम लोग सहमत नहीं हुए। पर इससे जान पड़ता है कि वह अभीतक सीधी राह पर नहीं आया है।

: ३० :

३ नवम्बर, '३१

लन्दन

होर विधान-निर्माण-परिषद् के काम में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा है। एक सप्ताह में परिस्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जायेगी।

गांधीजी इन लोगों की अवहेलना कर मुसलमानों से समझौता कर लेते; पर उनकी तीन शर्तें हैं:

(१) समझौता कांग्रेस को मंजूर हो।

(२) राष्ट्रवादी मुसलमान और सिक्ख भी उसे मंजूर करें।

(३) मुसलमान उनकी प्रत्येक राष्ट्रीय माँग का समर्थन करने को तैयार हों।

गांधीजी का यह भी कहना है कि अछूत, यूरोपियन, एंग्लो-इंडियन और देशी ईसाई—इनको पृथक् निर्वाचन का अधिकार न दिया जाये। मुसलमान न तो इसका समर्थन करते हैं, न उनकी दूसरी राष्ट्रीय माँगों का। इसलिए गांधीजी इस प्रश्न की ओर विशेष ध्यान नहीं दे रहे हैं। वह जानते हैं कि उनकी ताक़त क्या है। उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि मुसलमानों को उनसे जितना मिल सकता है, उतना सरकार या

पंचायत से नहीं। उनका विश्वास है कि आज या कल मुसलमानों को उनके पास जाना ही होगा। सरकार से तो उन्होंने कह दिया है कि तुम जजों से इसका फ़ैसला करा लो—पर मुसलमानों को यह मंज़ूर नहीं है। मालूम नहीं, सरकार क्या करेगी।

अपने कुछ हिन्दू नेताओं से मेरी शिकायत यह है कि उन्होंने गांधीजी के हाथ में इस मामले को न छोड़कर इस आक्षेप के लिए गुंजाइश कर दी कि न तो मुसलमान उनका नेतृत्व स्वीकार करते हैं, न हिन्दू; फिर महात्माजी प्रतिनिधि हैं तो किनके? अगर हम लोगों ने एकमत हो यह कह दिया होता कि 'गांधीजी जो कुछ करेंगे' हमें स्वीकार होगा तो हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हल होती या नहीं, यह दूसरी बात है, पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे हमारी ताक़त कहीं बढ़ जाती और हम आज दुनिया की निगाह में कहीं ऊँचे होते। इन लोगों की दलील की तह में जो भयंकर कमज़ोरी है, उसे ये देखने में असमर्थ हैं।

गांधीजी प्रधान-मंत्री से मिले। कोई खास नतीजा न निकला। परिस्थिति न तो आशाजनक है, न निराशा-जनक।

: ३१ :

५ नवम्बर, '३१

लन्दन

इस सप्ताह में महात्माजी ने मैकडानल्ड, होर और बाल्डविन से बातें कीं। बातों का नतीजा यह निकला है कि आगामी मंगल और बुध को मंत्रिमण्डल भारत के विधान के सम्बन्ध में विचार करके अपने निर्णय पर पहुँचेगा। बुध या बृहस्पति को अल्पसंख्यक-दल-परिषद् या विधान-निर्माण-परिषद् का आह्वान करेगा और प्रधान-मंत्री अपनी राय खुल्लमखुल्ला जाहिर कर देगा। उसके बाद उसे हम चाहे स्वीकार करें या अस्वीकार करें या उस पर बहस करें। यह भी आशा दुराशा नहीं है कि बहस में हम और रद्दोबदल कर दें, पर यह कठिन मालूम होता है। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी किस तरह से हल हो, इसका निर्णय प्रधान-मंत्री दे देगा। इस लिए यह कहा जा सकता है कि आगामी सप्ताह में हमारा भविष्य नक्की हो जायेगा। शायद २०-२५ नवम्बर तक हम यहां से कूच कर जायें। क्या होगा, यह कहना तो आसान नहीं है, किन्तु गत कान्फ्रेंस से ज्यादा आगे न बढ़ेंगे, यह स्पष्ट मालूम होता है। यह भी चाल है कि प्रान्तों को अभी से स्वातन्त्र्य दे दें और केन्द्र के विधान को खटाई में डाल दें।

किन्तु हम लोगों ने एकमत से निर्णय कर लिया है कि इसे कभी स्वीकार नहीं करना। यह चाल मुसलमान और अंग्रेज मिलकर कर रहे हैं, जिससे भविष्य में पंजाब बराबर चिल्लाता रहे कि हमें केन्द्रीय स्वराज नहीं चाहिए और इस तरह विलम्ब होता रहे।

महात्माजी साप्ताहिक विश्राम के लिए दो दिन (शनि और रवि) बाहर जाते हैं। अबकी बार पर्य्यटन आक्सफ़ोर्ड की ओर होगा। साथ में प्रधान-मंत्री का लड़का, लार्ड लोथियन, अध्यापक गिलबर्ट मरे आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति रहेंगे और दो दिन आपस में बातें होती रहेंगी।

कल महात्माजी ने कुछ स्वयंभू नेताओं से कहा कि "मैंने तो प्रधान-मंत्री से कह दिया है कि ये लोग तो तुम्हारे मेहमान हैं। यदि ये प्रतिनिधि बनने का दावा करें, तो इन्हें चुनाव से आने दो। देखो, इन्हें कितने वोट मिलते हैं और मुझे कितने वोट मिलते हैं।" महात्माजी की इस तरह बातें करने की आदत नहीं है। यह घटना प्रकट करती है कि इन लोगों ने उन्हें कैसी ठेस पहुँचाई है। कल मैंने कहा कि यह स्थिति अत्यन्त भयंकर है कि साम्प्रदायिक संस्थायें काँग्रेस की देवराणी-जेठाणी बनने की कोशिश करें। स्वराज के लिए लड़ाई तो लड़े कांग्रेस, और यहाँ आने पर ऐसे लोग कूद-कूदके कहें कि हिन्दुओं के प्रतिनिधि हम हैं, महात्माजी नहीं। फिर तो सहज ही प्रश्न उठता है कि आखिर महात्माजी किसके प्रतिनिधि हैं? इन लोगों ने संग्राम में तो कोई स्वार्थत्याग किया नहीं, अब टाँग अड़ाने को और महात्माजी की तौहीन करने को यहाँ भी पहुँच

गांधीजी फाकस्टन बन्दर पर

गये। महात्माजी ने कहा कि "मेरी दवा तो हिन्दूसमाज को प्रिय नहीं, वह समझती भी नहीं कि मेरी दवा क्या है। गुण्डेपन की दवा गुण्डापन है, ऐसा ही वह मानती है। ऐसी हालत में जबतक हिन्दू मेरी दवा का मर्म न समझें, हिन्दूसभा को अपने क़ब्ज़े में करना मैं मुनासिब नहीं समझता।" मैं तो यह कहूँगा कि हिन्दूसभा को चाहिए कि वह हिन्दुओं को मज़बूत बनाये; रीतिरस्म, अछूतपन में सुधार करे, शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करे, किन्तु राजनीति में कांग्रेस की प्रतिस्पर्धा करना भयंकर मालूम होता है। आखिर कांग्रेस ने लुटा क्या दिया? महात्माजी के 'आत्मसमर्पण' का भी तो नतीजा देख लेना चाहिए।

बाल्डविन ने तो महात्माजी से साफ़ ही कह दिया कि आप चाहते हैं सो आपको नहीं मिलेगा। मैंने महात्माजी से कहा कि यदि आठ आने भी मिलेंगे तो आपके बल पर—इसलिए आप यहाँ से हर्गिज़ न भागें। महात्माजी ने कहा—"मैं जानता हूँ। भागूँगा नहीं।" उनकी चाल यह है कि कम मिले तो स्वीकार नहीं करना। जितना खैंच सकें, उतना खैंचकर कह देना कि जो कुछ तुम दे रहे हो, वह मुझे तो स्वीकार नहीं है।

काश्मीर के सम्बन्ध में यहां बड़े ज़ोरों से मुसलमानों का पक्ष है। यह ध्यान रहे कि देना न इन्हें हिन्दुओं को है, न मुसलमानों को—किन्तु पीठ उनकी ठोंकते हैं और हमको लड़ाते हैं।

रात को एक भोज में मुझे निमंत्रण था। एक मुस्लिम

अफ़सर, जो कभी हिन्दुस्तान में था, बग़ल में बैठा था। एक ओर पोलिटिकल महकमे का एक उच्च सरकारी अफ़सर बैठा था। दोनों ही अंग्रेज़ थे। पुलिसवाले ने कहा कि "हिन्दू-मुस्लिम-झगड़ा तो फैलाया हुआ है, मैंने ख़ुद देखा है कि आज भी गांवों में यह समस्या नहीं है।" उसने मुझे एक क़िस्सा सुनाया। सरहद से तीन दिन के रास्ते पर एक क़िले में इनकी फ़ौज थी। एक बनिया रसद देता था। उसके मर जाने पर इनकी फ़ौज के मुसलमान सिपाहियों ने कहा कि इसे हिन्दुस्तान जलाने को भेजना चाहिए। अफ़सर ने कहा कि—तीन दिन का रास्ता है, कहाँ भेजेंगे? यहीं गाड़ दो। किन्तु मुसलमानों को यह पसन्द न आया। आख़िर उन्होंने अपने ख़र्च से लकड़ी जुटाई, उसकी अर्थी सजाई और बैंड बजाते स्मशान में ले गये। अफ़सर मुझसे कहता था कि कई सिपाही तो रोते थे। उसने मुझसे पूछा—बताओ, हिन्दू-मुस्लिम-समस्या कहाँ है? मैंने कहा कि क्या बताऊँ, तुमने ही तो फैलाई है। बग़ल के पोलिटिकल महकमेवाले अफ़सर ने एक मुस्लिम नेता की ओर, जो भोज में शरीक था, इशारा करके कहा कि काश्मीर की आधी आँधी इस शख़्स ने उठाई है। बात यह है कि यहाँ भी करतूत सरकार की ही है। अफ़सर जानते हैं, सब लोग जानते हैं—फिर भी हमारे आदमी अन्धे हैं। अछूतों की माँग का महात्माजी विरोध करते हैं। कहते हैं कि मैं इनको कैसे अलग कर दूँ?

: ३२ :

६ नवम्बर, '३१

लन्दन

कल गांधीजी और हम सब लोग सम्राट् के मेहमान थे। सब क़रीब ४०० थे। कितने लोग तो देशी पोशाक में थे। मैं तो देशी पोशाक ले ही नहीं आया था, इसलिए "चिमनी" हैट ओढ़कर ही गया था। महल में बिजली की चकाचौंध—और काली पोशाकवालों के बीच गांधीजी नंगे पाँव और चद्दर ओढ़े ऐसे मालूम होते थे जैसे अमावस्या में चन्द्रमा। सम्राट् और सम्राज्ञी सिंहासन-भवन में एक तरफ़ खड़े हो गये और हम लोग अभिवादन करते हुए सामने से निकल गये। सब लोग अभिवादन कर चुके, तब सम्राट् और सम्राज्ञी ने चुने हुए लोगों को बुला-बुलाके बातें करना शुरू किया। पहले हैदराबाद का मंत्री, फिर मैसूर, फिर बड़ौदे का मंत्री। इसके बाद गांधीजी बुलाये गये। खड़े-खड़े क़रीब सात मिनिट बातें हुईं।

बातचीत में प्रधान भाग सम्राट् का ही था। गांधीजी हँसते जाते थे, बोले बहुत कम। सारांश सुनने में यह आया :

सम्राट् ने कहा कि "मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। जब मैं युवराज की हैसियत से दक्षिण अफ़्रीका गया था, तब

आपने भारतीय प्रजा की ओर से मुझे सम्मानपत्र प्रदान किया था। जुलू-संग्राम में भी आपने सहायता पहुँचाई। उसके बाद महासमर में आपने और आपकी धर्मपत्नी ने बड़ी सहायता की। अफ़सोस की बात है कि उसके बाद आपका रुख़ बदल गया और आपने सत्याग्रह इख़्तियार किया। आप जानते हैं कि सरकार के लिए अपनी हुकूमत क़ायम रखना ज़रूरी है—शासन तो आख़िर करना ही पड़ता है।" गांधीजी ने कहा कि, श्रीमान् के पास इतना समय नहीं और मैं प्रत्युत्तर देना भी नहीं चाहता। सम्राट् ने कहा, ठीक है, किन्तु शासन तो करना ही पड़ता है। फिर उन्होंने बंगाल की बमबाज़ी का ज़िक्र किया और कहा कि यह बहुत बुरी चीज़ है, इससे कोई लाभ नहीं हो सकता। गांधीजी ने कहा कि मैं उसे रोकने की भरपूर चेष्टा करता रहता हूँ। फिर सम्राट् ने पूछा—मैंने सुना है कि आप बच्चों को ख़ूब प्यार करते हैं, यह सच है? गांधीजी ने कहा कि मैं बच्चों के बीच ही रहता हूँ।

गांधीजी का सम्राट् से मिलना राष्ट्रीयता की विजय है। यह पहला मौक़ा है कि इस तरह एक अर्द्धनग्न मनुष्य और साथ में महादेव भाई गांधी टोपी पहने सम्राट् से मिले। साथ ही, इससे अंग्रेज़-जाति की भी एक ख़ूबी का पता चलता है। अंग्रेज़ बनिये हैं, स्वभाव से ही संग्रामप्रिय नहीं। प्रिन्स ऑव् वेल्स की गांधीजी ने 'अवज्ञा' की, तो भी सम्राट् उनसे सौजन्य-पूर्वक मिले। राजपूतों के इतिहास में और ही प्रकार के उदाहरण मिलेंगे। महाराणा उदयपुर ने अलवर-नरेश

को कभी "महाराज" कहके सम्बोधित नहीं किया। "अलवर ठाकुर साहब" ही कहते रहे। अंग्रेज़ सरकार ने तोपों की सलामी दी—हिज़ हाइनेस तक कहा—मरते समय महाराज जयपुर ने ढिलाई कर दी—मगर राणा अकड़े ही रहे।

'नानक' नन्हे ह्वै रहो जैसे नन्हीं दूब।
घास-पात जल जायँगे—दूब खूब की खूब॥

: ३३ :

१२ नवम्बर, '३१

लन्दन

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या में कोई फेर नहीं पड़ा है। गांधीजी तो इस सम्बन्ध में बातें करने से भी इन्कार कर देते हैं। कोई बातें करने आता है, तो कह देते हैं कि मेरे समय की बर्बादी न कीजिए। मुसलमानों ने चाहा भी कि फिर बात छेड़ें; किन्तु गांधीजी ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। बात यह है कि मुसलमान और सिक्खों को छोड़कर बाक़ी अंग्रेज, ईसाई, अधगोरे, अछूत, ज़मींदार, व्यापारी और मज़दूर इनमें किसी को भी अलग "कुर्सी" नहीं देना चाहते। मुसलमान दिखाने को तो अछूतों का पक्ष करते हैं, किन्तु असल में अंग्रेज़ों को "कुर्सी" न मिले, यह कहने की किसीकी भी हिम्मत नहीं है। कोई अछूतों की सिफ़ारिश करने आता है, तो महात्माजी गरम हो जाते हैं। और कह देते हैं कि तुमको अछूतों की क्या खबर! अछूतों का मुखिया तो मैं हूँ।

मुसलमान ५१ के बजाय ५० भी लेने को तैयार हैं, ऐसी हवा आती है। महात्माजी कहते हैं कि "५१ ही लो; किन्तु और किसीको कुछ नहीं मिलेगा। मैं भारतवर्ष का बँटवारा करने नहीं आया हूँ। मुसलमानों और सिक्खों को किसी तरह

मैंने वरदाश्त कर लिया। अब और ज़्यादा गुंजाइश नहीं है।" मज़ा यह है कि पाँच हिन्दू एक स्वर से अछूतों को सीट दिलाने के पक्ष में हैं और अलग मताधिकार भी। गोया हिन्दू-जाति का वँटवारा हो रहा हो। गत रविवार को आक्सफ़ोर्ड में महात्माजी, लार्ड लोथियन, मैकडानल्ड का वेटा, और इर्विन के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। महात्माजी ने यह स्कीम दी कि सच्चा प्रान्तीय स्वराज तो शीघ्र स्थापित कर दिया जाये। केन्द्रीय स्वराज का विधान चाहे तैयार न हो; किन्तु रूप-रेखा अभी से घोषित कर दी जाये। प्रान्तीय परिषदों का नया चुनाव हो। और उन चुनिन्दा लोगों में से प्रान्तीय परिषदें अपने प्रतिनिधि नई गोलमेज़ परिषद् के लिए मनोनीत करें और वह नई गोलमेज परिषद् केन्द्रीय स्वराज के लिए घोषित रूप-रेखा के अनुसार नया विधान तैयार करे। सप्रू वग़ैरह इससे वड़ी घवड़ाहट में पड़े हैं। वे इसलिए कि सरकार नामधारी स्वराज देकर केन्द्रीय स्वराज को ढील में डाल सकती है। उनकी यह आशंका सही भी है; क्योंकि सरकार की नीति भी कुछ ऐसी ही है। और अब उन्हें गांधीजी का सहारा मिल गया। किन्तु गांधीजी कहते हैं कि "यदि वे आगे न चले तो मुझे क्या डर है। मैं उनसे अच्छी तरह लड़ लूंगा। तुम लोगों में आत्मविश्वास नहीं है, इसलिए तुम लोग ऐसी बातें करते हो।" गांधीजी इस गोलमेज़ परिषद् से उकता गये हैं। यह परिषद् एक तरह से वावन भेष की टोली वन गई है। लोग अपना अलग-अलग स्वर निकालते रहते हैं। हिन्दुस्तान की तो किसी को भी नहीं सूझती। आर० टी० सी०

का मजमा ऐसा वन गया है, जैसे वीस वाजों में, अलग-अलग स्वर में, एक ही साथ भिन्न-भिन्न राग गाये जायें। गांधीजी की चाल में एक तरह से दूरदर्शिता है सही; किन्तु इसका फल तभी हो सकता है जबकि हम लोग अपनी ताक़त वनाये रक्खें। इस सप्ताह में होर से वार्तालाप होनेवाला था, पर वह वीमार पड़ गया। आज महात्माजी और होर के वीच वार्तालाप होगा। पंडितजी और प्रधान-मंत्री के वीच कल वातें हुई थीं। उससे यह आभास मिला कि केन्द्रीय स्वराज का तो केवल वादा कर देंगे और प्रान्तीय स्वराज की अभी से घोषणा करके आगामी अगस्त तक क़ानून पास करा देंगे। प्रधान-मंत्री ने कहा कि आप लोग जव अपना झगड़ा तय नहीं कर सकते, तव हमसे क्या आशा कर सकते हैं! इर्विन ने भी पुरुषोत्तमदास से कहा कि तुम्हारे झगड़े ने तुम्हारा काम वरवाद कर दिया। यह सही है, किन्तु यह भी है कि कुछ लोग जो सरकार से खा गये हैं, अपना-अपना पक्ष जोर से खैंचकर समझौता नहीं होने देते और ऐसे-ऐसे खानेवाले लोग आज नेता बने वैठे हैं। अभी एक योजना और गढ़ी जा रही है। मुसलमान, अछूत, अंग्रेज़, अधगोरे, ईसाई—आपस में एक सन्धिपत्र तैयार कर रहे हैं। किन्तु इसमें भी अंग्रेज़ अपनी शक्ति क़ायम रखना चाहते हैं, सो उनके वीच भी अभी तक कोई समझौता नहीं हुआ है। मुझे तो कोई समझौता होने की आशा भी नहीं है। हमारे प्रधान जमाल-मोहम्मद साहव वेचारे खूव दौड़-धूप करते हैं और अपना सौजन्य भी सावित कर दिया है। वह कहते हैं कि जिन्ना

राष्ट्रवादी है, तुम्हारे पीछे मुसलमानों से खूब लड़ता है। यह यहाँ की हालत है।

आज यहाँ आये क़रीब दो महीने हो गये और हम लोग एक तिल भी आगे नहीं बढ़े हैं। क्या होगा यह भी पता नहीं है। गोलमेज़ परिषद् का यह दो महीने का इतिहास बड़ा दर्दनाक है। हमलोग कितने निकम्मे हैं, यह लोगों ने यहाँ साबित कर दिया। ऐक्य तो है ही नहीं। सब लोग अपना-अपना मान बढ़ाने की फ़िक्र में हैं। इस मर्ज़ से शायद ही कोई बचा हो। गांधीजी हमारे कप्तान हैं और उन्हें सहायता पहुँचानी चाहिए, इसकी किसीको भी चिन्ता नहीं। इसका कारण यही है कि ये सब-के-सब सरकार द्वारा मनोनीत किये गये हैं। यदि प्रजा द्वारा मनोनीत किये गये होते तो यह नौबत न आती। इर्विन-गांधी-समझौते के समय जो दृश्य था, वह यहाँ देखने में नहीं आता। वल्लभभाई, जवाहरलाल इत्यादि किसीने वाइसराय के घर की तरफ़ भी जाकर नहीं ताका, और सारा भार गांधीजी पर छोड़ दिया। यहाँ यह हालत है कि गांधीजी प्रधान से मिलते हैं तो उसके बाद ही मुसलमानों के नेता आग़ा खाँ से मुलाक़ात होती है। फिर अछूत नेता अम्बेडकर—सिक्ख नेता उज्जलसिंह आदि से मुलाक़ात होती है और नरमदल के नेता डाक्टर सप्रू से। और इन मुलाक़ातों में सब लोग अपना अलग-अलग वक्तव्य देकर आते हैं। हमारी अनेकता ऐसी साबित हुई, जैसी पहले कभी नहीं हुई। ब्रिटिश कूटनीति की सोलहो आने विजय हुई है। सब बातें लिखने से तो अत्यन्त दुःख

होता है, क्योंकि हमारे बड़े नेताओं ने भी यहाँ अपने सम्मान के मोह-जाल में फँसकर एकता को कैसे नष्ट कर दिया है, इसका दुखदायी प्रदर्शन मिलता है। भविष्य में जब कभी समझौते की बात उठे तो पहली शर्त यह हो कि जो लोग मनोनीत हों, वे प्रजा द्वारा निर्वाचित हों—जिससे, कम-से-कम, कांग्रेस का बहुमत आ जावे और निर्वाचित लोग एक डोर में बँधे हुए हों। यहाँ तो यह हालत है कि **नाइयों की बारात में सभी ठाकुर।**

आर्थिक प्रश्नों के सम्बन्ध में बेन्थल और हम लोगों के बीच टूटी-फूटी बातें चली आ रही हैं। अभी तक बैंक ऑव इंग्लैण्ड के परिचालकों से कोई वार्तालाप नहीं हुआ; किन्तु बेन्थल और कैटो ने सूचना दी है कि यहाँ के सेठ लोग हमारे आर्थिक क्षेत्र पर कोई अधिकार नहीं चाहते, बशर्ते कि हम उनसे रुपया उधार माँगने को न आयें।

: ३४ :

१३ नवम्बर, '३१

लन्दन

कल होर से गांधीजी मिले। परिस्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो गई। प्रान्तीय स्वराज को छोड़ और कुछ मिलनेवाला नहीं है। होर ने कहा कि बाक़ी बातों की जाँच-पड़ताल की जायेगी, फिर निश्चय किया जायेगा कि क्या करना चाहिए। गांधीजी ने कहा—इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि जाँच-पड़ताल में २-३ साल लग जायें। उसने कहा—हाँ, हो सकता है। गांधीजी बोले—और संभव है, अन्त में यह निश्चय हो कि कुछ भी न दिया जाये। उसने यह संभावना भी स्वीकार की। सो इस आर० टी० सी० का नतीजा यह निकला! गांधीजी ने कहा—"बहुत खूब! हम एक-दूसरे से मित्रता रखते हुए ही अलग हों—यही मेरी आन्तरिक इच्छा है।" गांधीजी बहुत शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करनेवाले हैं—कहा जाता है, एक सप्ताह के भीतर ही। तैयारी शुरू कर दी है।

आज अल्पसंख्यक-दल-परिषद् की बैठक थी। प्रधान-मंत्री ने कहा कि अगर इस प्रश्न का निर्णय मुझपर छोड़ना है, तो बाक़ायदा अपनी-अपनी स्वीकृति मुझे दे दो। उसने यह भी कहा कि विधान-निर्म्माण-परिषद् की बैठक अगले

सप्ताह होगी। यह किसलिए? जब केन्द्रीय स्वराज की संभावना ही नहीं, तब इस परिषद् का काम ही क्या है? कुछ लोगों को इससे आशा होती है कि होर ने जो कुछ कहा वह अन्तिम शब्द नहीं है—या कम-से-कम परिस्थिति उतनी निराशाजनक नहीं है। पर वास्तव में आशा के लिए गुंजाइश बहुत कम—शायद नहीं के बराबर—रह गई है। गत मई महीने में विलिङ्गडन ने सप्रू और जयकर से कुछ ऐसी ही बातें की थीं। कहा था कि फ़िलहाल प्रान्तीय स्वराज मिल जाये तो क्या बुरा है? जो बात इतने दिनों से दिल में थी, वह अब निकलने लगी है।

अब इर्विन भी कह रहा है कि बात मेरे बस की नहीं—लोग यह कह रहे हैं कि जब बायकॉट बन्द नहीं हुआ, तब तुम्हारे और गांधी के बीच के समझौते का मूल्य क्या समझा जाये?

अल्पसंख्यक दलों के बीच जिस समझौते की चर्चा थी उसका मसविदा निकल गया। इसमें सिक्ख शामिल नहीं हैं। हिन्दुस्तानी ईसाइयों के यहाँ जो दो प्रतिनिधि हैं उनमें डा० दत्त ने न तो इस बातचीत में ही कोई भाग लिया है न इसमें शरीक ही हुए हैं। इस समझौते में ऐसी बातें ज़रूर हैं, जिनपर आपत्ति की जा सकती है। पर यह कैसे मान लिया जाये कि इसमें काट-छाँट की गुंजाइश नहीं है? भिन्न-भिन्न दलों के जो नेता बनकर यहाँ आये हैं उनके लिए यह कलंक की बात रहेगी कि ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर भी वह अपनी संकीर्णता की तंग गलियों को छोड़कर राष्ट्रीयता की—

एकता की—चौड़ी सड़क पर न आ सके। अफ़सोस ! अगर विचार-पूर्वक देखा जाये तो अल्पसंख्यक दलों की यह संयुक्त माँग भी इतनी भयङ्कर नहीं है कि आपस में समझौता होने की आशा ही त्याग दी जाये। यूरोपियन जितनी कुर्सियाँ माँगते हैं उतनी उन्हें नहीं मिल सकतीं। पर वह भी जानते हैं कि वह इससे कम के हक़दार हैं और कुछ कम कर देने पर भी वह सन्तुष्ट हो जायेंगे। अछूतों से यह समझौता होना असंभव नहीं दीखता कि तुम्हें इतनी कुर्सियाँ दे दी जायेंगी, पर तुम्हें संयुक्त निर्वाचन स्वीकार करना होगा। ईसाई, ऐंग्लो-इंडियन को भी कुछ-न-कुछ देना ही होगा। सवाल पंजाब और बंगाल का रह जाता है। अगर घड़ीभर के लिए मान लिया जाये कि मुसलमानों को ५१ फ़ीसदी मिल गया तो आखिर इससे क्या हो जायेगा ? प्रलय उपस्थित हो जायेगा ? ५०—५० पर समझौता हो सकता है। अगर यह कहा जाय कि मुसलमान और अंग्रेज़ मिलकर हर हालत में हिन्दू-सिक्ख से अधिक रहेंगे तो इसके खिलाफ़ यह दलील भी है कि मुसलमानों के सारे वोट एक ही ओर पड़ेंगे, यह मान लेने की कोई वजह नहीं है। राजनीतिज्ञता, दूर-दर्शिता—इन गुणों को अपने शासकों में देखने की हमारे नेता प्रायः इच्छा प्रकट किया करते हैं। कम-से-कम इस मौक़े पर इन्हें भी तो इन गुणों का परिचय देना चाहिए था। भारतवर्ष-जैसे देश का भविष्य गढ़ने चले हैं, पर अपना-अपना हठ, दुराग्रह, तअस्सुब, तंगदिली घड़ी भर के लिए भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

ब्रिटिश कूटनीति के लिए हमारे इन नेताओं ने सारा मार्ग बहुत ही सुगम और परिष्कृत कर दिया। अगर हमारी एकता होती तो उसकी ऐसी पूरी विजय कभी न होती। जिन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ब्रिटिश सरकार से, ब्रिटिश पूंजीपतियों से, दरअसल बातचीत करने के लिए यहाँ गांधीजी की ज़रूरत थी, उनकी तो उनसे चर्चा ही नहीं की गई। अपने शत्रुओं को यह जीत बहुत ही सस्ते दामों मिली।

: ३५ :

१६ नवम्बर, '३१

लन्दन

आशा की लता मुरझा कर फिर कुछ हरी हो चली है। अंग्रेज़ व्यापारी दौड़-धूप करने लगे हैं, अधिकारियों की ओर से भी चेष्टा हो रही है कि बातचीत का सिलसिला जारी रहे। कान्फ़्रेंस तोड़ देना आसान काम है—पर सभी समझते हैं कि इसका नतीजा क्या होगा। जो बातचीत चल रही है, उसमें हमारे शत्रुओं की ओर कितनी सचाई है, कहना कठिन है। कान्फ़्रेंस टूटने की संभावना से वे कुछ लज्जित हुए हैं—कुछ भयभीत भी। शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा कि बातचीत आगे बढ़ाने में उनका वास्तविक उद्देश क्या था।

बेन्थल कल आप ही आप मुझसे मिलने आया। कुछ चिन्तित-सा था। कहा कि फ़साद की जड़ होर है, वही विरोध कर रहा है; पर हमने अपने दल की ओर से उसे लिखा है कि अगर कान्फ़्रेंस टूट गई—उसका उद्देश सिद्ध न हुआ—तो इसका परिणाम भयङ्कर होगा और हम लोग भी उसके लिए तैयार नहीं हैं। बेन्थल का कहना है कि मंत्रिमण्डल में होर प्रभावशाली ज़रूर है, पर उसकी चलेगी नहीं। मैंने कहा कि तुम लोगों ने मुसलमानों और अछूतों के प्रतिनिधियों

से इक़रारनामा करके समस्या और भी जटिल कर दी है। उसने कहा कि हम लोगों ने कोई इक़रारनामा नहीं किया है। हमने तो एक तरह से दरख्वास्त की है कि हमारा यह हक़ है—हमें शासन-विधान में यह अधिकार मिलना चाहिए। जब मैंने कहा कि तुम लोगों को प्रतिनिधित्व का अधिकार दूसरे ढंग से भी मिल सकता है तब उसने कहा कि मुझे इसका रास्ता बताओ, हम लोग उसपर विचार करेंगे। मैंने कहा कि तुम पहले मुसलमानों को इस बात के लिए राज़ी करो कि हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख प्रश्न को वह प्रधान-मंत्री पर छोड़ दें। उसने कहा कि मुसलमान औरों को छोड़कर निपटारा कराने को कभी तैयार न होंगे। अन्त में यह तय हुआ कि बेन्थल और कार मेरे यहाँ महात्माजी से मिलें। रात को ९।। बजे सब मिले। महात्माजी ने अंग्रेज़ों को कुर्सियाँ देने से साफ़ इन्कार किया। मैंने बहुत समझाया-बुझाया, पर वह टस-से-मस न हुए। मेरी राय है कि अगर समझौता हो सकता है तो इनको कुर्सियाँ देकर भी कर लेना चाहिए, जिससे इनके द्वारा अपने को सहायता मिल सके। पर महात्माजी का मत और है। वह आपस में समझौता करके यह तय कर देना चाहते हैं कि अमुक प्रान्त में अंग्रेज़ों को—संयुक्त निर्वाचन से—इतनी कुर्सियाँ मिला करें—क़ानूनन ऐसा होने देना उन्हें मंजूर नहीं। वह कहते हैं कि कांग्रेस लिखकर दे देगी और अंग्रेज़ों को उसके क़ौल-करार पर ही रहना होगा। बेन्थल ने कहा कि बंगाल में जो लोग हमारे खून के प्यासे हो रहे हैं, वे हमारे साथ ऐसी सहानुभूति

गांधीजी मौलाना शौकत अली के साथ

गांधीजी दर्शकों के बीच

कब दिखायेंगे, हमारे साथ ऐसा न्याय कब करेंगे? पर महात्माजी अन्ततक यही कहते रहे कि हम अंग्रेज़ों के साथ न्याय करना ज़रूर चाहते हैं, पर हमारे बीच जो कुछ समझौता होगा, वह क़ानून के घेरे के बाहर। महात्माजी का मौन-दिवस था, इसलिए वह अपनी राय काग़ज़ पर लिखकर ही ज़ाहिर करते रहे। आज रात को फिर बातें होंगी। मुझे आशा नहीं होती कि अंग्रेज़ों को महात्माजी की बात कभी मंज़ूर होगी।

कैटो भी दौड़-धूप कर रहा है। उसका लार्ड रीडिङ्ग पर काफ़ी प्रभाव है और उसने इनसे कहा कि यह क्या वाहियात काम हो रहा है! बात यह है कि सत्याग्रह की संभावना ने सबको गहरी चिन्ता में डाल दिया है। व्यापारियों को अपने व्यापार की फ़िक्र है और वह जानते हैं कि अगर भारतवर्ष ने फिर उस राह पर क़दम रक्खा, तो उनका व्यापार चौपट हो जायेगा। उनकी बातों का यहाँ के अधिकारियों पर भी प्रभाव पड़ा है। कल होर ने महात्माजी को बुलाकर उन्हें समझाना चाहा कि उसकी स्कीम को उन्होंने पूरा नहीं समझा है—अर्थात् वह प्रान्तीय स्वराज तक ही परिमित नहीं है। आज विधानपरिषद् में भी कुछ आशाजनक भाषण हुए। प्रधान-मंत्री ने तो सप्रू को लिखा है कि मैं कभी विश्वासघात न करूँगा, और अगर मेरी न चली, तो मैं इस्तीफ़ा दे दूँगा।

इधर जेनरल स्मट्स भी इस मामले में दिलचस्पी लेने लगे हैं। उसका महात्माजी का पुराना परिचय है। परिचय

ही नहीं, दोनों का दक्षिण अफ़्रीका में काफ़ी सम्बन्ध रहा है। स्मट्स की अन्तर्राष्ट्रीय संसार में अच्छी ख्याति है। आयर्लैण्ड के साथ जो सन्धि हुई थी, उसमें इसने ख़ासा भाग लिया था। जब बातों-बात महात्माजी ने उससे कहा कि मैं ख़ाली हाथ लौटनेवाला हूँ, तब वह बोला कि "इसपर कौन यक़ीन कर सकता है कि तुम्हें ये लोग ख़ाली हाथ लौटने देंगे? तुम भारत के हृदय-सम्राट् हो—इन्हें यह तो मालूम होना चाहिए कि तुम्हारे ख़ाली हाथ लौटने का वहाँ क्या नतीजा होगा।" फिर उसने हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न की चर्चा की। महात्माजी ने कहा कि फ़िलहाल और कुछ नहीं तो लखनऊ का समझौता तो है। उन्होंने इस प्रश्न को हल करने का रास्ता भी बताया। स्मट्स उनका प्रस्ताव लेकर प्रधान-मंत्री के पास गया और दूसरे समय महात्माजी से रिज होटेल में, जहाँ वह मुसलमानों से बातें करने गये थे, मिला। उसने कहा कि मैकडोनल्ड पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है और वह कहता था कि गांधी एक अद्भुत व्यक्ति है—उसका अभिप्राय समझना कठिन-से-कठिन काम है। स्मट्स ने कहा कि ये लोग आपको नहीं जानते, इसीसे ऐसी बातें करते हैं। पर मेरी अपनी सहानुभूति प्रधान-मंत्री के साथ है—मैंने महात्माजी से कहा भी कि आपकी भाषा सरल-से-सरल और साथ ही गूढ़-से-गूढ़ होती है। शायद ही कोई दावा कर सकता हो कि उसने आपका यथार्थ भाव समझ लिया। खैर, स्मट्स ने सहायता पहुँचाने का वचन दिया और उससे जो कुछ हो सकता है, वह कर रहा है। हमारे सम्राट् यहाँ से प्रायः सौ

मील पर सेंड्रिघम में विराजमान हैं। स्मट्स वहाँ जा पहुँचा है और वहाँ से मि० एण्ड्रूज़ के नाम परवाना आया है कि आप आकर मिलें।

: ३६ :

१७ नवम्बर, '३१

लन्दन

कल रात वेन्थल और कार फिर महात्माजी से मिले। घंटे भर तक महात्माजी उन्हें फटकारते रहे। उन लोगों ने अपनी सफ़ाई में वार-वार यह कहा कि हमारा मुसलमानों से कोई समझौता—कोई इक़रारनामा—नहीं है—हमने तो एक अर्ज़ी-सी पेश की है कि हमें इतना मिलना चाहिए। पर महात्माजी को इससे कुछ भी सन्तोष न हुआ। उन्होंने जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है:

"तुम लोगों पर मेरा जो विश्वास था, वह उठ गया। मुसलमानों से—अछूतों से—तुम लोगों ने जो समझौता कर लिया उससे मेरे दिल को ऐसा घाव लगा है, जो जल्दी भरने का नहीं। तुम कहते हो कि तुम्हारी यह हरकत मुझे बुरी लगी है। इन शब्दों से मेरा भाव पूरी तरह व्यक्त नहीं हो सकता। बुरा लगना तो एक साधारण-सी बात है—तुम्हारी करतूत तो वह दग़ा है, जिसमें तुमने मुझे अपने खंजर का शिकार बनाना चाहा है। तुम्हारे पास तो सभी साधन हैं, अगर तुम्हें अपने हक़ न मिलते तो हमसे खुल्लमखुल्ला लड़ लेते। मैं बराबर यही कहता आया कि अंग्रेज़ों का

विश्वास करो, अब मैं किस मुँह तुम्हारी भलमनसाहत का इज़हार कर सकता हूँ? तुमने तो यह साबित कर दिया कि तुम्हारे आदर्श अभी बदले नहीं हैं—तुम ईस्ट इंडिया कंपनी की ही राह पर चलनेवाले हो। कंपनी ने अपना प्रभुत्व जमाने के लिए कभी इसका साथ दिया, कभी उसका—कभी इसको उससे लड़ाया कभी उसको इससे—और अन्त में सब को तंग-तबाह करके अपना साम्राज्य क़ायम कर लिया। तुम भी ऐसी ही भेदनीति से काम लेना चाहते हो। आज भारतवर्ष में जो जातियाँ जीवन-संग्राम में पिछड़ी हुई हैं, जिनके पास न दौलत है न दिमाग़ है, उनको अपने चंगुल में फँसाकर तुम सारे देश पर अपनी सत्ता क़ायम रखना चाहते हो। ग़नीमत है कि तुम अंग्रेज़-समाज के भी प्रतिनिधि नहीं हो। मैं दावा करता हूँ कि उनका सच्चा प्रतिनिधि मैं हूँ। बंबई के नौजवान अंग्रेज़ तुम्हारी तरह नहीं हैं। यहाँ भी मुझे एक अंग्रेज़ ऐसा नहीं मिला, जिसने तुम्हारी तारीफ़ की हो। अगर तुम इस समझौते से आप-ही-आप नहीं निकल जाते, तो या तो मैं इसे चूरचूर कर दूँगा या उसके लिए लड़ता हुआ मर मिटूँगा।"

अंग्रेज़ों ने कहा कि हम तो निकल गये हैं, हमारा अब उससे कोई लेना-देना नहीं है—क्योंकि हमने सबकुछ प्रधान-मंत्री पर छोड़ दिया है। पर गांधीजी को इन बातों से सन्तोष न हो सका।

मुसलमानों ने यह ज़ाहिर कर रक्खा था कि हम लोग विधान-परिषद् की कार्यवाही में भाग न लेंगे, पर हार के

समझाने पर राज़ी हो गये और परिषद् का काम फिर जारी है। पंडितजी सेना के सम्बन्ध में प्रायः एक घंटा बोले। पर सन्तोष न हुआ। कहते थे कि दो-तीन घंटे और बोलूंगा। जमाल मोहम्मद साहब की मुसलमानों ने बड़ी फ़जीहत की है। बेचारे डर गये हैं। उस दिन गांधीजी की उपस्थिति में मुसलमानों ने उन्हें अपमानित किया। कहा कि तुम जासूस हो, इधर की बातें उधर पहुँचाते हो। इक़बाल बोला कि तुम्हारे पास पैसे हो गये, तो तुम अपने आपको बहुत बड़ा आदमी समझने लगे! जमाल साहब की ज़बान कब बन्द रहनेवाली थी? जबाब दिया कि तुम्हें काफ़िया मिलाना आ गया तो तुम अपने को क़ौम का सिरताज समझने लगे? जमाल साहब किसीसे दबनेवाले नहीं हैं। कोई हो तुर्की-बतुर्की जबाब दे देंगे। उनमें यह दोष है कि मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं और वाक्चातुरी न होने के कारण लोगों को अकारण ही चिढ़ा देते हैं। कुछ लोग—उनके मित्रों में ही—उन्हें मग़ज़चट कहने लगे हैं। मुसलमानों की आँखों में तो वह काँटे के समान चुभते हैं।

: ३७ :

२० नवम्बर, '३१
लन्दन

इस सप्ताह महात्माजी लॉयड जार्ज से उसके घर पर मिले। लॉयड जार्ज ने कहा कि आपको सत्याग्रह करना ही पड़ेगा—विना लड़ाई के आपको स्वराज मिलनेवाला नहीं है। उसने मैकडॉनल्ड को कमज़ोर वताया। कहा कि टोरी दल के १५० मेम्बर भी मैकडॉनल्ड का साथ देनेवाले हों, तो वह अपनी स्कीम पास करा सकता है।

मैकडॉनल्ड की कमज़ोरी की शिकायत और लोगों से भी सुनने में आई है। इस सप्ताह लेवर-पार्टी के प्रधान मेम्बर स्मिथ और लारेन्स मेरे यहाँ खाना खाने आये थे। अगले सप्ताह वेजउड वेन और दूसरे लोग भी आनेवाले हैं। स्मिथ पिछली लेवर-मिनिस्टरी में रह चुका है, और लारेन्स अर्थ-विभाग का पार्लमेण्टरी मंत्री था। स्मिथ से वड़ी देरतक बातें होती रहीं, वह वरावर नोट लेता गया। मैंने उसे सारी परिस्थिति समझाई और वताया कि अगर झगड़ा चला तो खज़ाने में टोटा वना ही रहेगा और इंग्लैण्ड को यहाँ से पैसे भेजकर भारतवर्ष का शासन करना पड़ेगा। उसको यह बात मार्के की जँची और उसने इस सम्बन्ध में कई प्रश्न किये।

अन्त में कहा कि "पारसाल गांधीजी ने यहाँ न आकर ग़लती की। इस साल टोरी दलवाले ग़लती कर रहे हैं। मैकडॉनल्ड कमज़ोर आदमी है, वह इस प्रश्न के लिए अपना सिर देने को तैयार नहीं है।" फिर उसने पूछा—पर अगर वह इतनी हिम्मत करे तो क्या गांधीजी अपना सिर देने को तैयार होंगे? मैंने कहा कि इस प्रश्न का उत्तर तो यह देखकर ही दिया जा सकता है कि हमें मिलता क्या है। पर अगर इतना भी हो जाये कि गांधीजी विरोध न करें तो बहुत है—और यह संभव है कि सोलह आने के बजाय बारह आने मिलने से गांधीजी विरोध न करेंगे। स्मिथ ने कहा कि "इस मंत्रिमण्डल से जो कुछ मिल जाये, ले लो—शीघ्र ही इसका पतन होगा और हम लोगों का फिर बोलबाला होगा। तब तुम्हें बहुत कुछ मिलने की उम्मीद रहेगी।"

: ३८ :

२७ नवम्बर, '३१

लन्दन

आज विधान-परिषद् की अन्तिम बैठक है। विधान बनने में तो न जाने अभी कितनी देर है, पर इसके नाम पर जो नाटक चल रहा था, वह अब पूरा हो चला। साथ ही बर्मा-गोलमेज़-कान्फ्रेंस नाम का दूसरा तमाशा शुरू हो रहा है।

इस सप्ताह महात्माजी प्रधान-मंत्री से फिर मिले। उन्होंने कहा कि प्रान्तीय स्वराज मैं लेने को तैयार हूँ—बशर्ते कि वह मेरे मन की चीज़ हो। पर मेरे प्रान्तीय स्वराज में न तो बंगाल के राजनैतिक क़ैदी जेलखानों में पड़े सड़ते रहेंगे, न वहाँ फ़ौज की ही कोई ज़रूरत रह जायेगी। महात्माजी तो मैकडॉनल्ड को मूर्ख और होर को समझदार बताते हैं। विधान-परिषद् के अध्यक्ष लार्ड सैंकी का उनपर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा है।

स्मिथ और लारेन्स से बातचीत हुई। कहते थे "कि मामला बिगड़ गया। हिन्दू-मुस्लिम-समझौता न होने का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। साथ ही स्वीकार करना होगा कि इसकी गुंजाइश भी है।" मैंने बेन से कहा

कि अगर सरकार पूरी तस्वीर हमारे सामने रख दे कि अगर तुम एक हो जाओ तो तुम्हें इतना मिल सकता है, तो समझौता आसानी से हो जाये। बेन बोला कि "इस कान्फ़्रेंस को किसी तरह ज़िन्दा रखना चाहिए। चाहे यह यहाँ काम करे चाहे वहाँ, मगर इसका काम जारी रहना चाहिए।"

रात लारेन्स और बेन मेरे साथ भोजन करने आये थे। देर तक बातें होती रहीं। बेन दिल का साफ़ आदमी है। उसने कहा कि "इम्पीरियल प्रिफ़रेंस दिलाने के लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ। मैंने इस मामले में कुछ नहीं किया।" एक्सचेंज के बारे में उससे मालूम हुआ कि शुष्टर जब यहाँ आया था तब उसने सिफ़ारिश की थी कि १-६ छोड़ दिया जाये। पर बेन ऐसे आर्थिक प्रश्नों के सम्बन्ध में कम—बहुत कम—जानकारी रखता है, इसलिए उसने इस मामले में शुष्टर से खुद बातें न कर सर हेनरी स्ट्राकोश और किश के सुपुर्द कर दिया। मैं उसको आर्थिक परिस्थिति समझाता रहा। उसने कहा कि कुछ होता-जाता नज़र नहीं आता। मैंने कहा कि अगर मैकडॉनल्ड महात्माजी को बुलावे और दोनों की दिल खोल-कर बातें हों, तो शायद कोई रास्ता निकल आवे। बेन ने कहा कि मैकडॉनल्ड ४-५ महीने से ज़्यादा ठहर नहीं सकता। टोरी दलवाले उसको और बाल्डविन को दोनों को ही बता बता देंगे। उसने पूछा कि जिन लोगों ने हिन्दुस्तान में रुपया लगा रक्खा है, उनको कैसे सन्तुष्ट किया जाये? मैंने कहा "कि हम न्याय से विमुख होना नहीं चाहते। पर अगर हमें सन्तोष नहीं होता तो क्रान्ति किसीके रोके रुक नहीं सकती। उस

हालत में, जिन लोगों ने रुपया लगा रक्खा है, उनके लिए और भी ख़तरा है। हमारे ऊपर तुम्हारे क़र्ज़ का बोझ ज़रूर है, पर आख़िर उसे चुकाने का रास्ता क्या है ? मान लो कि हम एक्सचेंज घटाकर अपना एक्सपोर्ट बढ़ाते हैं, उस हालत में भी तुम्हारे व्यापार को धक्का लगता है। पर असलियत तो यह है कि संसार के इतिहास में इस तरह का क़र्ज़ कभी किसी देश ने चुकाया नहीं है। बात असंभव-सी है। तुम्हारी नीति ऐसी होनी चाहिए कि हमसे असल तो नहीं, पर सूद बराबर अदा होता जाये।" बेन ने कहा कि यहाँवालों को यह मालूम हो कि असलियत यह है तो वह और भी सख़्ती से पेश आयेंगे। मैंने कहा, "पर हमने तो स्वतंत्र होने का संकल्प कर लिया है—हम कब चुपचाप बैठने-वाले हैं!" बेन बोला—तुम्हारा कहना ठीक है, पर व्यापारी बड़े जड़-बुद्धि होते हैं। मैंने कहा कि अगर सत्याग्रह-संग्राम फिर छिड़ा तो यह नौबत आ जायेगी कि शासन के लिए इंग्लैण्ड को यहाँ से पैसे भेजने होंगे। बेन बोला—"ठीक है, पर अगर एक डिस्ट्रिक्ट अफ़सर के मनोविज्ञान को देखो, तो उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वह इस तर्क का क़ायल होगा। वह कभी नहीं सोच सकता कि मेरे कारनामों का यह असर होगा कि सरकार के ख़ज़ाने में टोटा रहेगा और यह बात ख़ुद मेरे हक़ में बुरी होगी। दुनिया अन्धी है, लोग बातों पर पूरा विचार नहीं करते—इसीसे तो इतनी ख़राबी है।"

तो हालत यह है कि कान्फ़्रेंस से कुछ भी नतीजा नहीं निकला। पर यह बिल्कुल टूट गई, यह भी नहीं कहा जा

सकता। बंगाल में और अन्यत्र भी दमन खूब ज़ोरशोर से होनेवाला है। साथ ही समझौते की बात भी जारी रहेगी। कैलास बाबू कहा करते थे कि अंग्रेज़ का एक हाथ पाँव पर और एक हाथ गर्दन पर रहता है। अगर उसने देखा कि आपमें कुछ दम नहीं तो झट गला दबा देता है, पर अगर उसे मालूम हुआ कि आपसी लड़ने-झगड़ने में उसे लेने-के-देने पड़ेंगे, तो उसे पाँव छूते देर नहीं लगती। उस अवस्था में वह यही कहता है कि मैं तो पहले से ही आपके पाँव चूमने को लालायित था। यही दशा कुछ समय तक रहेगी। अगर उपद्रव बढ़ा तो समझौता बहुत शीघ्र हो जायेगा, नहीं तो देने-दिलाने की बात को खटाई में डाल देंगे।

इस सप्ताह कुछ भाषण मार्के के हुए—नरम दलवाले भी जोश-खरोश, सरगर्मी से बोले। महात्माजी ने कहा कि गोले-बारूद से हम डरनेवाले नहीं हैं; हमारे बच्चे भी उन्हें पटाखे समझने लगे हैं। सप्रू, जयकर, शास्त्री, मुदलियार—सबने एक स्वर से प्रान्तीय स्वराज से आगे न बढ़ने का विरोध किया। मुसलमानों की ओर से भी कहा गया कि यह पर्याप्त न होगा। मुदलियार मद्रास प्रान्त के अब्राह्मण दल का प्रतिनिधि है। बहुत समझदार आदमी जान पड़ता है। लार्ड सैंकी तो कल आपे से बाहर हो गया। बेन को बच्चे की तरह डाटकर कहा कि ज़बान मत खोलो। जब बेन न माना, तब कहने लगा कि यह हालत रही तो मैं कुर्सी छोड़ दूँगा। दरअसल बात यह है कि इधर परिस्थिति में जो कुछ अन्तर पड़ा है, उसका श्रेय बेन और

लीज स्मिथ को ही है। सरकार की चाल को ये बखूबी समझते हैं और अगर ये न होते तो होर और सैंकी ने कान्फ्रेंस को शायद चुपचाप दफ़ना दिया होता। सैंकी का बेन से चिढ़ना स्वाभाविक है।

भाईजी का एक तार महात्माजी के नाम आया है कि आप मुसलमानों के साथ जैसा मुनासिब समझें, समझौता कर लें। गांधीजी मुझसे कहते थे कि इसका समय तो जाता रहा। मैंने कहा कि इस समय भी आपको अगर हम १५ हिन्दू लिखकर दे दें, तो आप क्यों न समझौता कर लें? महात्माजी बोले कि "जबतक मालवीयजी और डाक्टर मुंजे लिखकर नहीं दे देते, तबतक मैं नहीं कर सकता। यहाँ उनके दस्तख़त के बिना मैं कुछ नहीं कर सकता।"

: ३९ :

४ दिसम्बर, '३१

लन्दन

कान्फ्रेंस के नाटक का आखिरी पर्दा गिर चुका। लोग एक-एक कर लन्दन छोड़ रहे हैं। महात्माजी कल प्रस्थान करते हैं। पंडितजी का प्रोग्राम अनिश्चित है। अमेरिका जाने का कुछ विचार था, मगर उन्होंने तय किया है कि एक सप्ताह यहाँ और विताकर इटली होते हुए हिन्दुस्तान जायेंगे।

पूरी कान्फ्रेंस शनिवार, सोमवार, मंगलवार तीन दिन वैठी। पहले दिन की कान्फ्रेंस में एक भी उल्लेखनीय बात नहीं हुई। दोस्त-दुश्मन सभी एक ही भाषण सुनने को उत्सुक थे और वह भाषण सोमवार को—मौन टूटने पर—होनेवाला था। दोनों दिन अधिवेशन साढ़े दस वजे दिन को आरम्भ हुआ, पर सोमवार की कार्यवाही २॥ वजे रात को पूरी हुई। शास्त्री-जैसे सुवक्ता भी भ्रम में पड़ गये और थोड़ी देर के लिए यह भूल गये कि दूसरा दिन शुरू हो चुका। उनके मुँह से भी 'आज' की जगह 'कल' निकल ही गया। सोमवार को पहले तो १०॥ से ७॥ वजे तक, फिर ६॥ से प्रायः २। वजे तक कान्फ्रेंस वैठी। मंत्रिमण्डल को प्रधान-मंत्री द्वारा होनेवाले वक्तव्य पर विचार करना था, इसलिए मैकडानल्ड

श्रौर होर को ५ वजे ही उठकर जाना पड़ा। फिर रात की बैठक में आये; वल्कि प्रधान-मंत्री की प्रार्थना से कान्फ़्रेंस कुछ देर के लिए स्थगित की गई। बात यह थी कि गांधीजी का भाषण होनेवाला था और प्रधान-मंत्री के पहुँचने में कुछ मिनिटों की देर थी, पर वह उसे पूरा-का-पूरा सुनना चाहता था। गांधीजी का भाषण लाजवाव हुआ। ऐसे मौक़ों पर उनकी एक-एक वात मर्मस्पर्शी हुआ करती है। सन्नाटा छा रहा था और सारी सभा चित्रित-सी जान पड़ती थी। प्रायः ७० मिनिटतक बोलते रहे। उनके वाद पंडितजी उठे। मुझे नींद सताने लगी थी और सिर में चक्कर आ रहे थे। इसलिए बीच ही में उठकर चला आया। दूसरे दिन पंडितजी कहते थे कि गांधीजी के वैसे भाषण के वाद कुछ कहना वाक़ी नहीं रह गया था—कुछ बोलने की इच्छा भी नहीं थी—पर नाम दे चुका था, इसलिए कुछ कहना ही पड़ा। यह भी सुना कि अन्तिम भाषण शास्त्री का था और वह अत्यन्त निन्दनीय था। लोगों को बहुत बुरा लगा—मुझे जो कुछ कहना था, आज रात का अधिवेशन आरंभ होने के कुछ ही समय बाद कह चुका था। मैं समझता हूँ कि मैंने ही यह कहने का साहस या दुस्साहस किया कि कान्फ़्रेंस को किसी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं हुई—इसमें आगे बढ़ना तो दरकिनार हम और पीछे हट गये। कान्फ़्रेंस के पुजारियों को यह बेसुरा लगा। कुछ तो बेतरह चिढ़े। पर दूसरों से—ख़ासकर गांधीजी से—मुझे बधाइयाँ मिलीं। दुश्मन के दल में से भी एकाध अंग्रेज़ बधाई दे गये। पर

लेवर-पार्टीवाले परिचित होते हुए भी खामोश रहे। मेरा मुख्य विपय यह था कि जव-तक हमारा वोझ हलका नहीं किया जाता—और इसके लिए काफ़ी गुंजाइश है, क्योंकि इंग्लैण्ड हमारे साथ वरावर अन्याय करता आया है—तवतक संरक्षणों का वन्धन ढीला या वर्दाश्त करने लायक़ हो ही नहीं सकता।

दूसरे दिन की वैठक ११॥ वजे शुरू हुई। अच्छी भीड़ थी, पत्र-प्रतिनिधियों को भी वैठने की इजाज़त मिल गई थी। गांधीजी को प्रधान-मंत्री को धन्यवाद देने का काम सौंपा गया। यह उन्हें वड़ा ही अच्छा मौक़ा मिला, और उन्होंने उसके वक्तव्य के सम्वन्ध में अपना भाव वड़ी खूवी से प्रकट कर दिया। जिस समय गांधीजी अपना रुख ज़ाहिर कर रहे थे उस समय कुछ मेंवरों की हालत देखते ही वनती थी। सभा-भंग होने पर पंडितजी के दफ़्तर—११ किंग स्ट्रीट—में वहुत से लोग इकट्ठे हुए। गांधीजी भी थे। प्रधान-मंत्री के भाषण की समीक्षा-परीक्षा होने लगी। कुछ मेंवरों की राय वही थी, जो वरावर से है—अर्थात् वहुत कुछ मिल गया। शास्त्री ने उस रात को भाषण तो निकम्मा दिया, पर उसमें ईमानदारी है, इसलिए असन्तुष्ट-सा ही था। गांधीजी के विचार में ज़रा भी परिवर्तन नहीं हुआ। पंडितजी डाँवाडोल थे। मुझे यह स्पष्ट दीख रहा है कि वक्तव्य से कुछ वनने-विगड़नेवाला नहीं है। सव कुछ इस वात पर निर्भर होगा कि कांग्रेस की लड़ने की शक्ति कितनी है।

होर से जब गांधीजी पीछे मिले तब उसने उनसे कहा कि "मैं तुम्हारी मित्रता चाहता हूँ। बंगाल ऑर्डिनेंस के लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ—मैं उसे पसन्द भी नहीं करता; पर मुझे लाचार होकर मंजूरी देनी पड़ी। तुम वहाँ जाकर परिस्थिति सँभालने की कोशिश करो। नये गवर्नर के सम्बन्ध में जो बातें कही जा रही हैं, वे निराधार हैं। वह बहुत अच्छा आदमी है।" सबसे बड़ी बात होर ने यह कही कि संरक्षणों के विषय में यहाँ जो कुछ तय हुआ है वह आख़िरी फ़ैसला नहीं है—सारा प्रश्न विचार के लिए खुला हुआ है।" यह सन्तोषजनक है। होर ने महात्माजी से यह भी कहा कि हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न को किसी तरह आपस में हल कर लो—बहुत कुछ उसीपर निर्भर है।

लार्ड लोथियन ने महात्माजी से कहा कि लड़ने से तुम्हारा भला ज़रूर है, पर ऐसी लड़ाई न करना कि हमारा सत्यानाश हो जाये। गांधीजी ने कहा, मैं इसका ध्यान रखूँगा। उसने कहा कि "माडरेटों के लिए हमारे दिल में कोई इज़्ज़त नहीं है। हमें तो तीन से समझौता करना है—तुमसे, मुसलमानों से और अ-ब्राह्मणदल के नेता पात्रो से।" गांधीजी ने कहा कि "दो की बात तो ठीक है—मगर पात्रो से समझौता करने की बात निस्सार है, इसे छोड़ो।"

सेमुअल कहता था कि बिड़ला! जब तुम्हें कभी नौकरी करने की ज़रूरत हो तो सर हेनरी स्ट्राकोश के पास जाना,

वह वड़ी अच्छी सर्टिफ़िकट देगा। मैंने पूछा कि वह मेरे विपय में क्या कहता था? रोड्स वोला, "मुझसे मत पूछो। तुम अपनी प्रशंसा सुनकर असमंजस में पड़ जाओगे!"

परिचय

रामेश्वर—श्री रामेश्वरदास बिड़ला (लेखक के बड़े भाई)

ब्रजमोहन—श्री ब्रजमोहन बिड़ला (लेखक के छोटे भाई)

महादेव—श्री महादेव देशाई

देवदास—श्री देवदास गांधी (महात्मा गाँधी के सब से छोटे पुत्र)

गोविन्दजी—श्री गोविन्द मालवीय (पं० मदनमोहन मालवीय के छोटे पुत्र)

पारसनाथजी—श्री पारसनाथ सिंह (लेखक के सेक्रेटरी)

मिस लेस्टर—कुमारी म्यूरियल लेस्टर (Miss Muriel Lester) (लेखिका, समाज-सेविका)

एमर्सन—(सर) एच० डब्ल्यू एमर्सन (Sir H. W. Emerson) (उस समय होम सेक्रेटरी थे, बाद पंजाब के गवर्नर हुए)

क्लार्क—सर रेजीनाल्ड क्लार्क (Sir Reginald Clarke) (कलकत्ते के भूतपूर्व पुलिस कमिश्नर, व्यवसायी)

शुस्टर—सर जार्ज शुस्टर (Sir George Schuster) (भारत सरकार के तत्कालीन अर्थसदस्य)

अटल—पंडित अमरनाथ अटल (जयपुर दरबार के अर्थ-मंत्री और प्रतिनिधि)

लोथियन—लार्ड लोथियन (Lord Lothian) (अमेरिका

में वर्तमान ब्रिटिश राजदूत, भारतीय राजनीति के अच्छे ज्ञाता)

वेन—श्री वेजवुड वेन (Mr. Wedgwood Benn) (मजूर-मंत्रिमण्डल में भारत-मंत्री, पार्लमेण्ट के पुराने सदस्य, सुलेखक तथा सुवक्ता)

स्ट्राकोश—सर हेनरी स्ट्राकोश (Sir Henry Strakosch) (अर्थ-शास्त्री, भारत-मंत्री के सलाहकार, व्यवसायी)

वेन्थल—सर एडवर्ड वेन्थल (Sir Edward Benthall) (कलकत्ते की वर्ड कम्पनी के 'वड़े साहव', ब्रिटिश व्यापारियों के प्रतिनिधि)

इंचकेप—लार्ड इंचकेप (Lord Inchcape) (किसी ज़माने में कलकत्ते के मि० जेम्स मैके, पी० एण्ड ओ० (P. & O.) नामक जगत्प्रसिद्ध जहाज़ी कम्पनी के सर्वेसर्वा)

कार—सर ह्यूवर्ट कार (Sir Hubert Carr) (वेन्थल के साथ भारत के ब्रिटिश व्यापारियों के प्रतिनिधि)

कैटो—लॉर्ड कैटो (Lord Catto) (कलकत्ते की एण्ड्रू यूल कम्पनी से सम्वन्ध रखनेवाले प्रसिद्ध अंगरेज़ व्यवसायी)

के० टी० शाह तथा प्रो० जोशी—वंवई के अर्थशास्त्री

रंगास्वामी अय्यङ्गार—(अव स्वर्गीय) (मद्रास के "हिन्दू" नामक पत्र के सम्पादक)

व्लैकेट—सर वेसिल व्लैकेट (Sir Basil Blackett) (शुष्टर से पहले भारत सरकार के अर्थ-सदस्य)

हर्बर्ट सैमुयल—सर हर्बर्ट सैमुयल (Sir Herbert Samuel) जिन्हें बाद में लार्ड की उपाधि मिली। (प्रसिद्ध यहूदी विद्वान् और राजनीतिज्ञ)

शफ़ी—सर मुहम्मद शफ़ी (पंजाब के मुस्लिम नेता जो भारत सरकार के सदस्य रह चुके थे)

कार्बेट—सर ज्योफ़े कॉर्बेट (Sir Geoffrey Corbett) (सिविलियन जो आर० टी० सी० के संयुक्त मंत्री थे)

नरेन्द्र नाथ—राजा नरेन्द्रनाथ (भूतपूर्व सरकारी कर्मचारी, पंजाब हिन्दू महासभा के नेता)

किश—(Mr. C. H. Kisch) (इंडिया आफ़िस के अर्थ-मंत्री)

डा० दत्त—डा० एस० के० दत्त (Dr. S. K. Datta) (पंजाब के प्रसिद्ध ईसाई अध्यापक और नेता)

इक़बाल—स्वर्गीय सर मुहम्मद इक़बाल (महाकवि)

स्मिथ—प्रो० लीज स्मिथ (Prof. Lees Smith) (पार्लमेण्ट के लेबर-मेंबर, अर्थशास्त्री)

लारेन्स—मि० पेथिक लारेंस (Mr. Pethick Lawrence) (पार्लमेण्ट के लेबर-मेंबर, अर्थशास्त्री)

कैलास बाबू—सर कैलास चन्द्र बोस (किसी ज़माने में कलकत्ते के सुप्रसिद्ध डाक्टर)

मुदलियार—सर रामस्वामी मुदलियार (इस समय भारत-सरकार के व्यापार-सदस्य, पहले मद्रास की 'जस्टिस पार्टी' के एक नेता)

भाईजी (पृष्ठ १२५)—श्री जुगलकिशोर बिड़ला

पात्रो—सर परशुराम पात्रो (मद्रास में कांग्रेस-विरोधी दल के एक नेता)

रोड्स—सर कैम्पबैल रोड्स (Sir Campbell Rhodes) (किसी जमाने में कलकत्ते के एक 'बड़े साहब', डायरी-लेखक के साथ इंडियन फ़िस्कल कमीशन के सदस्य)